

ISSN : 2278:0912

❖ ओ३म् ❖

ज्योतिष्कृणोति सूनरी

आर्ष-ज्योतिः

श्रीमद्दयानन्दवेदार्ष-महाविद्यालय-न्यासस्य

द्विभाषीय-अन्तराष्ट्रीय-मूल्याङ्कित-शोधपत्रिका

भाद्रपद-आश्विनमासः, विक्रम संवत् - २०७३ / सितम्बरमासः-२०१६

वर्षम् - ८ :: अङ्कः - ९९

मूल्यम्- रु. ५ प्रति, वार्षिकम्-५०

❖ संरक्षकाः ❖

स्वामी प्रणवानन्दः सरस्वती

कै. रुद्रसेन आर्यः

श्रीगिरीश-अवस्थीवर्याः

आचार्ययज्ञवीरवर्याः

श्रीचन्द्रभूषणशास्त्री

❖ परामर्शदातृमण्डलम् ❖

डॉ. रघुवीरवेदालङ्कारः

प्रो. महावीरः

डॉ. सोमदेवशास्त्री (मुम्बई)

डॉ. ज्वलन्तकुमारशास्त्री

❖ मुख्यसम्पादकौ ❖

डॉ. धनञ्जय आर्यः

रवीन्द्रकुमारः

❖ कार्यकारी सम्पादकः ❖

ब्र. शिवदेवार्यः

❖ लेखपर्यवेक्षकाः ❖

डॉ. धर्मेन्द्रकुमारशास्त्री

डॉ. विनयविद्यालङ्कारवर्याः

❖ कार्यालयः ❖

श्रीमद्दयानन्द-आर्ष-ज्योतिर्मठ-गुरुकुलम्

दूनवाटिका-२, पौंथा,

देहरादूनम् (उत्तराखण्डः)

दूरवाणी - ०९४१११०६१०४

website: www.pranwanand.org

E-mail : arsh.jyoti@yahoo.in

विषय-क्रमणिका

विषयः	लेखकः	पृ.सं.
सम्पादक की कलम से		०२
राष्ट्रीय अखण्डता के...	- डॉ० रघुवीरवेदालङ्कारः	०४
सिद्धान्त ज्योतिष की...	- विकासशास्त्री	०७
पर्यावरण-शुद्धि में यज्ञ की...	- डॉ० रक्षिता	१०
वैदिक सभ्यता है सिन्धु घाटी	- राजेश आर्यः	१३
मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था	- कु. उमेश्वरी	१७
ध्वन्यात्मकशब्दनिरूपणम्	- डॉ. शुभा सिंहः	२०
योगवासिष्ठस्य काव्यतत्त्वविमर्शः	- चन्द्रमणिः	२३
रघुवंशे वर्णिताः आदर्शाः	- रोशनलालः	२७

जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

-स्वामी दयानन्द सरस्वती

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

अभ्यास की कलम से...



धर्म की आवश्यकता क्यों?

जीवन की सफलता सत्यता में है। सत्यता का नाम धर्म है। जीवन की सफलता के लिए अत्यन्त सावधान होकर प्रत्येक कर्म करना पड़ता है, यथा - मैं क्या देखूँ, क्या न देखूँ, क्या सुनूँ, क्या न सुनूँ, क्या जानूँ, क्या न जानूँ, क्या करूँ अथवा क्या न करूँ। क्योंकि मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है, जब मनुष्य किसी भी पदार्थ को देखता है तब उसके मन में उस पदार्थ के प्रति भाव (विचार) उत्पन्न होते हैं। क्योंकि यही मनुष्य होने का लक्षण है, इसीलिए निरुक्तकार यास्क ने मनुष्य का निर्वचन करते हुए लिखा है कि 'मनुष्यः कस्मात् मत्वा कर्माणि सीव्यति' (३/८/२) अर्थात् मनुष्य तभी मनुष्य है जब वह किसी भी कर्म को चिन्तन तथा मनन पूर्वक करता है। यही मनन की प्रवृत्ति मनुष्यता की परिचायक है अन्यथा मनुष्य भी उस पशु के समान ही है जो केवल देखता है और बिना चिन्तन मनन के विषय में प्रवृत्त हो जाता है।

मनुष्य जब किसी पदार्थ को देखकर कार्य की ओर अग्रसर होता है तब चिन्तन उसको घेर लेता है, ऐसे समय में धर्म बताता है कि आपको किस दिशा में कार्य करना है, यही धर्म की आवश्यकता है। यदि धर्म जीवन में होगा तब जाकर श्रेष्ठ कर्म को कर सकेंगे अथवा पदार्थ का यथायोग्य व्यवहार (कर्म) कर सकेंगे।

काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, मद और मोह ये मानव जीवन में मनःस्थिति को दूषित करने वाले हैं। ये

षड्रिपु मनुष्य की उन्नति के सर्वाधिक बाधक होते हैं इनका नाश मनुष्य धर्मरूपी अस्त्र से कर सकता है। इन विध्वंसमूलक प्रवृत्तियों को जीतना ही जितेन्द्रियता तथा शूरवीरता कहलाता है। यदि व्यक्ति के अन्दर धर्म नहीं है तो वह इनके वशीभूत होकर स्वयं तथा सामाजिक पतन का कारण बन जाता है।

इन पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए परमावश्यक होता है कि व्यक्ति विवेकशील हो और विवेकशील होने के लिए आवश्यक है अच्छे सद् चरित्रवान् मित्रों का संग करें तथा अच्छे ग्रन्थों का स्वाध्याय करें।

आज हमारी युवा पीढ़ी धर्म के अभाव में पतन की ओर अग्रसरित होती चली जा रही है, ऐसे में लोगों की चिन्तन क्षमता समाप्त हो गयी है। नित्य नये-नये मानवीय हासता के कृत्य दिखायी देते हैं, ऐसा क्यों है? क्या हमने कभी विचार व चिन्तन किया है? आज हमारी सोचने की क्षमता इतनी कम क्यों हो गयी है, क्योंकि हम धर्म को समझ ही नहीं पा रहे हैं। हम धर्म को एकमात्र कर्मकाण्ड का रूप स्वीकार करते हैं। आज हमें धर्म को स्वयं के अन्दर धारण करना होगा। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध इन दश प्रमुख कर्तव्यों को स्वयं के लिए धारण करने का नाम धर्म बताया है।

धर्म की परिभाषा करने वाले विभिन्न आचार्यों के अपने-अपने मत हैं। संसार में मतवालों ने अपने-अपने धर्म के नाम पर विभिन्न चिह्न बना लिए हैं, जैसे- कोई केश बढ़ा रहा है, कोई लम्बी दाढ़ी बढ़ाये हुए है, कोई केश व दाढ़ी दोनों ही बढ़ाये हुए है, कोई पाँच शिखाएँ रखे हुए है, कोई मूछ कटाकर दाढ़ी बढ़ा रहा है, कोई चन्दन का तिलक लगाए हुए है, कोई माथे पर अनेक रेखाओं को अंकित किये हुए है और न जाने धर्म के नाम पर क्या-क्या करते हैं। किन्तु ये सभी धर्म से सम्बन्ध नहीं रखते हैं क्योंकि कहा भी है - 'न लिङ्गं धर्मकारणम्' अर्थात् धर्म का कारण कोई चिह्न विशेष नहीं होता है।

यदि हम धर्म को जानना चाहते हैं तो हमें धर्मशास्त्र की इस पंक्ति को समझना होगा-

‘धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः’

जो व्यक्ति धर्म को जानना चाहता है, उसे वेद को प्रमुखता के साथ जानना होगा। धर्म धारण करने का नाम है इसी लिए कहते हैं ‘धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः’। जो किसी भी कार्य को करने में सत्य-असत्य का निर्णय कराये, चिन्तन व मनन कराये उसे धर्म कहते हैं। हम धर्म को धारण करते हैं तथा उसको व्यवहार रूप में प्रस्तुत करते हैं।

धर्म ज्ञान के लिए वेद ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि वेद ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है और ईश्वर सर्वज्ञ होने से उसके ज्ञान में भ्रान्ति अथवा अधूरापन का लेशमात्र भी निशान नहीं है। वेदज्ञान सृष्टि के आदि का है तथा सभी का मूल है, अतः हम मूल को छोड़ पत्तों अथवा टहनियों को समझने में अपना समय व्यर्थ न करें।

इसीलिए धर्म का ज्ञान और उस पर आचरण मनुष्य के लिए परमावश्यक है, यह हमारी उन्नति व सुख का आधार है। मनुष्य के परम लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि में परमसहायक है।

वेद मनुष्य को आदेश देता है ‘मा मृत्योरुदगा वशम्’। मनुष्य को प्रतिक्षण सर्तक रहकर अपने चारों ओर फैले मृत्यु के भयंकर पाशों से बचने का प्रयास करना चाहिए।

उपनिषद् का ऋषि प्रार्थना करता है-‘मृत्योर्माऽमृतं गमय’ हे प्रभो ! मुझे इन मृत्युपाशों से बचाकर अमरता का पथिक बनाइए। इसी रहस्य को स्पष्ट करने के लिए ही धर्मशास्त्रकार घोषणा करता है-**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः**। अर्थात् जो व्यक्ति धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है और जो धर्म को नष्ट करता है, धर्म उसको नष्ट कर देता है। जीवन में हताशा और किंकर्तव्यमूढता धार्मिक पक्ष के निर्बल होने पर ही आती है। जीवन में अधर्म की वृद्धि ही व्यक्ति को निराश तथा दुर्बल बना देती है अतः धर्म की वृद्धि करके व्यक्ति को सबल व सशक्त रहना चाहिये जिससे अधर्म के कारण क्षीणता न आ

सके। धर्म से परस्पर प्रीति व सहानुभूति के भावों की वृद्धि होती है।

आचार्य चाणक्य ने लिखा है-“**सुखस्य मूलं धर्मः धर्मस्य मूलमिन्द्रियजयः**।” अर्थात् सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल -इन्द्रियों को संयम में रखना है। संसार में प्रत्येक मनुष्य की इच्छा होती है कि मैं सुखी रहूँ और सुख की प्राप्ति धर्म के बिना नहीं हो सकती। अतः धर्म का आचरण अवश्य ही करना चाहिये। बिना धर्म को अपनाये कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता।

संसार की कोई भी वस्तु सुख का हेतु हो सकती है परन्तु मरणोत्तर किसी के साथ नहीं जा सकती। शास्त्रकार कहते हैं-‘**धर्म एकोऽनुगच्छति**’ आर्थात् एक धर्म ही मरणोत्तर मनुष्य के साथ जाता है। संस्कृत के नीतिकार कहते हैं-

**धनानि भूमौ, पशवश्च गोष्ठे, नारी गृहे बान्धवाः
श्मशाने। देहश्चितायां परलोकमार्गे, धर्मानुगो गच्छति
जीव एकः ॥**

अर्थात् समस्त भौतिक धन भूमि में ही गड़ा रह जाता है अथवा आजकल बैंकों में या तिजोरियों में ही धरा रह जाता है और गाय आदि पशु गोशाला में ही बंधे रह जाते हैं। पत्नी घर के द्वार तक ही साथ जाती है और परिवार के भाई-बन्धु व मित्रजन श्मशान तक ही साथ देते हैं एक मनुष्य का शुभाशुभ कर्म (धर्म) ही परलोक में मनुष्य का साथ देता है अर्थात् धर्म के अनुसार ही मनुष्य को परलोक में अच्छी-बुरी योनियों में जाना पड़ता है।

हमें धर्म को यथार्थ में जानकर व्यवहार रूप में स्वयं के लिए धारण करने की आवश्यकता है। धर्म ही एकमात्र हमारा अस्त्र तथा शस्त्र है, जिसका प्रयोग कर हम इह लोक से पारलौकिक यात्रा को पूर्ण करें। आओं! हम सब मिलकर धर्म को धारण करें।

- शिवदेव आर्य

गुरुकुल पौन्धा, देहरादून
मौ.-८८१०००५०९६

राष्ट्रीय अखण्डता के उन्नायक – श्रीकृष्ण

□ डॉ. रघुवीर वेदालंकार...✍

भारतवर्ष भौगोलिक दृष्टि से सुविस्तृत राष्ट्र रहा है। प्रदेश के स्तर पर शक्तिशाली माण्डलिक राजा अनेक होने पर भी वे किसी एक ही द्वीप शासन के अधीन रहे हैं। महाभारत तक आते-आते यह व्यवस्था उच्छिन्न होने लगी। इतना ही नहीं, अपितु उस समय अनाचार, स्वार्थ, धर्मान्धता, पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष आदि विकार भी तात्कालिक राजाओं में घर कर गये थे। इनके कारण देश के विभिन्न प्रदेशों में अनेक उद्दण्ड, प्रजापीडक, स्वेच्छाचारी राजा शासन कर रहे थे। ऐसी अवस्था में प्रजा तो इनके अत्याचारों से त्रस्त थी ही, राष्ट्रिय अखण्डता भी खतरे में पड़ गयी थी। इस पर भी विडम्बना यह कि किसी का भी ध्यान विशाल भारतवर्ष की इस दुर्दशा पर नहीं था।

यह राज्यलिप्सा की पराकाष्ठा ही थी कि कंस अपने पिता को भी कैद करके स्वयं राजा बन बैठा। यह तो ऐसा ही था जैसे कि औरंगजेब अपने पिता शाहजहाँ को कैद करके राजा बना था। मगध में जरासन्ध भी अधिक शक्तिशाली, धर्मान्ध तथा क्रूर था जिसने ८० राजाओं को वन्दी बना कर रखा था और सौ पूरे होने पर उन सबकी बलि देवी के आगे दी जाती। इससे बड़ा घोर अत्याचार और क्या होगा? यह जरासन्ध कंस का ससुर भी था। अतः इसकी शक्ति द्विगुणित ही नहीं, कई गुना बढ़ गयी थी। सिन्धु में जयद्रथ, जो दुर्योधन का बहनोई था, आचार-विचार में दुर्योधन जैसा ही था। असम में महिषासुर का आतंक था। पाण्डव तथा कौरव तो गृहकाल की आग में ही जल रहे थे। पितामह भीष्म, जिनके उपदेश हमें महाभारत ग्रन्थ में अच्छे लगते हैं, हस्तिनापुर की गद्दी की रक्षा तक सीमित हो गये थे। वह गद्दी अच्छे-बुरे क्या कार्य

कर रही है, इसकी भीष्म को चिन्ता नहीं थी। बृहत्तर अखण्ड भारत के विषय में तो उन्होंने कभी सोचा ही नहीं था।

इस दुरावस्था को कृष्ण जैसे राष्ट्रपुरुष ने देखा तथा इसके निवारण का बीडा उठाया, यही कृष्ण का कृष्णत्व है। हमारे अधिसंख्य कृष्णभक्त बन्धु तो अभी भी जिस कृष्ण का स्मरण करते हैं, वह इस प्रकार है-

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे

**विनिवेशयत्तम्। वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं वालं
मुकुटं मनसा स्मरामि ॥**

कितना मजेदार श्लोक है? पैर का अंगूठा मुख में देकर चूसने वाला, यही बाल कृष्ण इनका उद्धार करेगा। कृष्णभक्तों! तुम्हें क्या हो गया? तुमने कृष्ण के सुदर्शनधारी स्वरूप को क्यों भुला दिया? क्या तुम्हें भगवद्गीता का यह श्लोक स्मरण नहीं रहा-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

कृष्ण का एक ही लक्ष्य है, एक ही धर्म - सज्जनों की रक्षा तथा धर्म की स्थापना, किन्तु इसके लिए अनिवार्य है दुष्टों, अन्यायियों, अत्याचारियों का समूल विनाश। इसके विना सज्जन मरते ही रहेंगे तथा धर्म डर कर भागता ही रहेगा। वर्तमान में कश्मीर इसका उदाहरण है। सब कुछ उलट हो रहा है वहाँ। कश्मीरी पण्डित मार कर भगा दिये गये हैं। आतंकवादी, अलगाववादी वहाँ दनदना रहे हैं। पाकिस्तान जिन्दाबाद, भारत मुर्दाबाद का नारा लगा रहे हैं। यह सब कृष्ण जैसे शक्तिशाली, निस्पृह राष्ट्रपुरुष के अभाव में हो रहा है। आज भी सम्पूर्ण राष्ट्र की, उसकी अखण्डता की चिन्ता किसे है? सबको अपनी पार्टी प्रतिष्ठा तथा सत्ता की

चिन्ता है।

श्री कृष्ण सर्वगुण सम्पन्न राष्ट्रपुरुष थे। वे वेदादिशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित, राजनीति विशारद, योगीराज तथा निष्कामकर्म योगी थे। उनके इन गुणों के कारण ही भीष्म ने कहा था -

नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते।

अर्थात् लोक में श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ कोई भी नहीं है। सचमुच कृष्ण ऐसे ही थे। उन्होंने दुष्ट दलन का बीडा उठाया। जरासन्ध तथा उसके दामाद कंस जैसे शक्तिशाली दुर्दान्त राजाओं का विनाश सामान्य कार्य नहीं था। यह कृष्ण की दूरदर्शिता ही थी कि इन दोनों पहलवानों को मल्लयुद्ध से ही यमराज से मिलने भेज दिया। सोचकर तो देखें कि यदि युद्ध होता तो कितना विनाश होता? इसीप्रकार कृष्ण ने शक्तिपूर्वक ही कंस के सहायकों, मुष्टि पाणूर आदि को भी ठिकाने लगा दिया।

कृष्ण को माखनचोर कहकर उनके भक्त कितने प्रसन्न होते हैं? जन्माष्टमी पर मुम्बई आदि में ऊँचे से ऊँचे स्थान पर हांडी बांध कर फोडने का नया ही खेल शुरु हो गया है। कृष्ण के पालक नन्द बाबा के घर तो हजारों गडएँ थीं। सहस्रों गायों के अधिपति की उपाधि तब 'नन्द' थी, ऐसे में कृष्ण को मखन चुराने की क्या आवश्यकता थी? लोग सत्य तक जाना नहीं चाहते। ब्रज तथा गोकुल का समस्त दूध तथा माखन कंस मथुरा मंगवा लेता था। कृष्ण ने इस अन्याय का प्रतिरोध किया। इस अभियान में ब्रज के गोप-गोपियाँ सब कृष्ण के साथ थे। यह एक सामाजिक आन्दोलन था, जिसे कृष्णभक्तों ने कृष्ण तथा गोपियों की रासलीला में बदल कर कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र को भी कलङ्कित कर दिया तथा उस महानायक कृष्ण को चोर, जार, शिखामणि की उपाधि दे डाली।

कंस, जरासन्ध जैसे पहलवानों को तो कृष्ण ने विना युद्ध ही अपनी नीति से ठिकाने लगा दिया, किन्तु दुर्योधन पर उनका वश नहीं चला क्योंकि उसके ऊपर

धर्मचक्षुओं तथा बुद्धि दोनों से हीन, पुत्रमोह रूपी दल-दल में आकण्ठ धंसे हुए दुष्ट धृतराष्ट्र का वरदहस्त था तथा द्रोण, भीष्म जैसे अप्रतिम योद्धा उसकी गुलामी कर रहे थे। कर्ण जैसा महारथी उसका साथी था। इतना होने पर भी कृष्ण ने स्वयं दूत बन कर शान्ति प्रस्ताव रखा, किन्तु दुर्योधन की तो वही स्थिति थी जो आज सिरफिरे पाकिस्तान की है।

ऐसी अवस्था में युद्ध ही एकमात्र सोचना था धर्म की रक्षा तथा अधर्म के विनाश का। कृष्ण ने यही किया। किन्तु युद्धभूमि में धनुर्धारी अर्जुन भी अपने स्वरूप तथा लक्ष्य को भूल गया। कैसी विकट स्थिति थी। इसका कोई निवारणोपाय भी नहीं था। यह केवल कृष्ण की नीतिमत्ता थी कि उन्होंने अर्जुन को उसके पूर्वरूप में ला खड़ा किया।

श्रीकृष्ण ने यहाँ पर अपने शास्त्रीय ज्ञान का उपयोग किया। उन्होंने अर्जुन को सांख्य तथा योग के माध्यम से ज्ञानयोग, निष्कामकर्मयोग, समत्वयोग तथा कर्मकौशल का पाठ पढ़ा कर उसके स्वरूप में प्रतिष्ठित किया उसे मोह से निकाला। जिससे निकलकर अर्जुन स्वयं बोला -

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युतः ॥

हे भगवन्! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया तथा अपने स्वरूप की स्मृति हो गयी है। पूरे विश्व में सम्भवतः यह पहला अवसर है जब किसी ने युद्धभूमि में योग का आश्रय लिया हो तथा उसके बल पर एक हताश निराश, मोहग्रस्त धनुर्धर को, जो कि शस्त्र त्याग कर चुका है, पुनः युद्ध के लिए सन्नद्ध किया हो।

युद्ध तो युद्ध के स्थान पर है किन्तु अर्जुन को दिया गया एक छोटा-सा उपदेश हम सबके लिए भी मार्गदर्शक एवं प्रेरणादायक है तथा वह है - 'स्वधर्मो निधनं श्रेयः' अर्थात् अपने धर्म में निधन होना ही श्रेयस्कर है। 'पर धर्मो भयावह' दूसरे का धर्म भयप्रद, कष्टप्रद होता है। यहाँ धर्म शब्द कर्तव्य का बोधक है। यदि राजा तथा प्रजाजन अपने-अपने वर्णाश्रम

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमासः-२०७३)

५

धर्मो-कर्तव्यों का पालन करने लगे तो राष्ट्र में अव्यवस्था होगी ही नहीं। किन्तु जब द्रोणाचार्य जैसे ब्राह्मण भी क्षात्रधर्म अपनाते तथा क्षत्रिय अर्जुन अपने क्षात्रधर्म का त्याग करे तो विनाश होगा ही। क्षत्रिय का धर्म युद्ध में शत्रु का विनाश या स्वयं अपनी आहुति दे देना है। अर्जुन इससे विमुख हो गया था।

श्रीकृष्ण राजनीतिविशारद तो है ही उनका शास्त्रीय ज्ञान भी अद्भुत है। भगवद्गीता इसका स्पष्ट प्रमाण है। गीता में भगवान् कृष्ण ने वेद-दर्शन-उपनिषदों आदि अनेक शास्त्रों का सार भर दिया है। यही गीता योग का उपदेश भी देती है तथा कर्म का भी। दोनों का समन्वय निष्काम कर्मयोग है। संसार में सर्वाधिक अनुवाद गीता का ही हुआ है। दिवंगत राष्ट्रपति कलाम भी गीता पढ़ते थे। पता नहीं गीताभक्त ये हमारे साधु-सन्त कर्म तथा राष्ट्ररक्षा से उपरत क्यों रहते हैं?

वर्तमान समय भी महाभारतकाल जैसा ही है। आज खुले-आम हत्याएँ, बलात्कार, अपहरण होते हैं। भ्रष्टाचार तथा घोटालों में तो मन्त्री-सन्तरी, नेता-अभिनेता भी फंसते रहते हैं। इससे भी भयावह है राष्ट्र में राष्ट्रविरोधियों की जमात, जो केन्द्र की नाक के नीचे भी 'भारत टूटेगा' का नारा लगाते हुए आतंकवादियों के पक्ष में खड़ा होता है। वे उनकी मौत पर मातम मनाते हैं तथा उन्हें आतंकी नहीं, शहीद कहते हैं। छत्तीसगढ़ आदि में नक्सलवाद तथा पूर्वोत्तर राज्यों में अल्फा जैसे अनेक संगठन भारत की अखण्डता को चुनौती दे रहे हैं। जन्माष्टमी मनाने वालों! यह लीला रचने वालों! मक्खन की हांडी फोडने वालों तथा सत्ता की ताक में बगुले की भांति लगे रहने वाले दलीय नेताओं! आज सुदर्शनधारी कृष्ण की आवश्यकता है जो दुष्टों का दलन तथा राष्ट्र की अखण्डता की रक्षा कर सकें।

-सरस्वती विहार, नई दिल्ली

आचार्य डॉ. धनञ्जय जी की मॉरिशस में वैदिक प्रचार-प्रसारार्थ यात्रा सम्पन्न

श्रावणी उपाक्रम के शुभअवसर पर मॉरिशस में वेद, यज्ञ एवं योग के प्रचार-प्रसार के लिए आर्य सभा मॉरिशस के निमन्त्रण पर आचार्य डॉ. धनञ्जय जी स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती की आज्ञा प्राप्त कर भारत से १८ जुलाई को मॉरिशस रवाना हुए तथा वहाँ १९ जुलाई २०१६ से ही वेद प्रचार-प्रसार के कार्यक्रम में संलग्न हो गये। आचार्य श्री के मॉरिशस में यज्ञ, योग तथा वेद प्रवचन के ७० से अधिक कार्यक्रम आयोजित हुए तथा अनेक कार्यक्रम मॉरिशस के रेडियो एवं दूरदर्शन पर भी प्रसारित हुए।

ध्यातव्य है कि आर्य सभा मॉरिशस द्वारा श्रावण मास को वेदमास के रूप में मनाया जाता है। इस मास में सम्पूर्ण मॉरिशस भर में यज्ञ एवं वेद प्रचार का आयोजन किया जाता है। सभी भारतवंशीय मॉरिशस निवासी वेदधर्म के रंग में रंग जाते हैं। चहुँ ओर यज्ञ का धूम दिखाई देता है। मॉरिशस देश के आर्यजनों का अतिथियज्ञ अनुकरणीय है।

दिनांक २७ अगस्त २०१६ को मॉरिशस निवासियों से विदा लेकर अपनी मातृभूमि भारत के लिए प्रस्थान किया। २८ अगस्त २०१६ को भारत पहुँचने पर संस्था संस्थापक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी, आचार्य चन्द्रभूषण शास्त्री जी, आचार्य यज्ञवीर जी तथा समस्त गुरुजनों तथा ब्रह्मचारियों ने स्वागत किया। तदनन्तर आचार्य जी ने अपनी यात्रा के वृत्तान्त को सभी के समक्ष रखा तथा इस यात्रा के लिए आर्य सभा मॉरिशस के श्री डॉ. उदयनारायण गंगू, श्री सत्यदेव प्रीतम, श्री बालचन्द्र तनाकूर, श्री हरिदेव रामधनी, पं. चूडुमणि आदि समस्त अधिकारी एवं सदस्यों का धन्यवाद ज्ञापन करते हुए पूज्य गुरुवर्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी तथा समस्त गुरुकुल परिवार का आभार प्रकट किया।

६

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमास:-२०७३)

सिद्धान्त ज्योतिष की वेदाङ्गता व फलित ज्योतिष की अवैज्ञानिकता

□ विकास शास्त्री...✍

वेद भारतीय ज्ञानविज्ञान, धर्म, संस्कृति, दर्शन व सदाचार के मूल स्रोत है। इसी कारण ये प्रत्येक काल के समस्त क्षेत्रों व जन जीवन को प्रकाशित करते हैं। युगो तक श्रुति परम्परा से ही इन्हे संरक्षित रखा गया, परन्तु कालांतर में जब वेदों का अर्थ दुर्बोध होने लगा, तब उनके सम्यक् ज्ञान के लिए वेदाङ्गों की आवश्यकता हुई।^१ वेदाङ्ग छह हैं- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द व ज्योतिष।

वेदाङ्ग का अर्थ है- वेद का अङ्ग। अङ्ग वे सहायक तत्व होते हैं जिनके द्वारा किसी के स्वरूप का बोध हो- **अङ्गयन्ते ज्ञायन्ते अङ्गानि**। वेदाङ्ग वेदार्थ को समझाने में सहाय्य प्रदान करते हैं। पाणिनीयशिक्षा में इनको वेदपुरुष के छह अङ्गों के रूप में वर्णित किया है। जिसमें ज्योतिष को वेद पुरुष का नेत्र माना जाता है- **ज्योतिषामयनं चक्षुः।**^२

आपस्तम्बधर्मसूत्र में भी ज्योतिष को वेदाङ्ग के रूप में स्वीकृत किया है।^३ संस्कृत के ज्योतिः या ज्योतिस् शब्द का मूल अर्थ है- प्रकाश, तेज, सूर्य। अतः ज्योतिष शब्द का अर्थ होगा- **आकाशीय ज्योतिषों अर्थात् सूर्यादि नक्षत्रों व ग्रहों आदि की गतियों को जानने की विद्या।**^४

ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में ज्योतिष- शास्त्र की व्युत्पत्ति '**सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रं**' से की गई है। तदनुसार जिसमें सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रादि पदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमण-काल, ग्रहण व स्थिति आदि सभी घटनाओं का बोध कराया जाये वह ज्योतिष शास्त्र है। आचार्य लगध ने याजुषज्योतिषम् में ज्योतिष को काल का विधान करने वाला शास्त्र कहा है व साथ ही उसके वेदाङ्गत्व का भी समर्थन किया है, यथा-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवित्ता कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः। तस्मादिदं काल विधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद वेदम्।।^५

अर्थात् वेद यज्ञ के लिए उत्पन्न हुए हैं और यज्ञ काल के अधीन है अर्थात् यज्ञ दिन, ऋतु, अयन, मास, आदि के आधार पर विभक्त किये गये हैं। वेद को जानने वाला वेदोक्त आचरण कर सकता है।

वैदिक परम्परा में सभी उत्तम-कर्मों को यज्ञ कहा गया है- **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।**^६ जितने भी उत्तम कर्म हैं वे सभी उचित समय पर करने पर ही उत्तम फलदायी होते हैं। यथा कृषिकर्म (बीजारोपण, सिचाई, कटाई आदि) उचित समय करने पर ही फसल प्राप्त की जा सकती है। दर्श पौर्णमास आदि याग उत्तम कर्म है। दर्शयाग का अभिप्राय है अमावस्या का किया जाने वाला हवन और पूर्णमास का अर्थ है पौर्णमास में किया जाने वाला हवन। अतः इन यागों को करने के लिए तिथि ज्ञान आवश्यक है। तिथिज्ञान चन्द्रगति आदि पर आधारित है। चन्द्र आदि की गतियों का निरीक्षण-परीक्षण ज्योतिष का विषय है, इसलिए वैदिक कृत्यों के सम्पादन में काल ज्ञान कराने वाले ज्योतिषशास्त्र की वेदाङ्गता स्वीकार की गयी है।

ऋग्वेद (१.१६१.४७) में सूर्य की ६-६ मासावली दोनों परिधियों के द्वारा उत्तरायण व दक्षिणायन का ज्ञान मिलता है। वहीं (१.१५०.५७) चन्द्रमा की गति से बनने वाले शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष का उल्लेख है। यजुर्वेद (१३.२५/१४.१३/१५.५७) में छह ऋतुओं का वर्णन है। ऋग्वेद (१.१६४.११) में सूर्य की परिक्रमा करने के लिए पृथिवी का घूमना और उससे दिन-रात एवं १२ महिनों का बनना लिखा है। वहीं (१.१६४.२/१३एवं४८) संवत्सर का ब्योरा दिया गया है। जिस रेखा पर पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। उस रेखा पथ का नाम वैदिक भाषा में वैश्वानरपथ है अथर्ववेद (८.८.६) में वैश्वानरपथ का निर्देश करते हुए उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव में ६-६ महीने के दिन व ६-६ महीने की रात होने का संकेत मिलता है।^७ इस प्रकार ज्योतिष से

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमास:-२०७३)

७

सम्बन्धित तत्वों के संकेत वेदों में मिलते हैं, किन्तु सामान्य जनों के लिए वेद के दुर्बोध्य होने के कारण वेदाङ्ग में पृथक् ज्योतिष-शास्त्र की रचना हुई।

संप्रति ज्योतिष मुख्यतः दो भागों में विभक्त हो चुका है- सिद्धान्तज्योतिष व फलितज्योतिष। सिद्धान्त का अर्थ है- अन्ते सिद्धः सिद्धान्तः अर्थात् जो निरीक्षण-परीक्षण के उपरान्त सत्य सिद्ध हो जाए, वह सिद्धान्त। सिद्धान्त ज्योतिष में खगोल एवं भूगोल की जानकारी अर्जित की जाती है एवं सूर्य, चन्द्र, ग्रह व नक्षत्र आदि की स्पष्ट गति, स्थिति, अयन योग ग्रहण आदि विषयों का सैद्धान्तिक विवेचन किया जाता है। सृष्टि से लेकर प्रलय काल तक की गणना उपलब्ध रहती है। जैसे कि भास्कराचार्य ने भी कहा है-

**त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदस्तथा
चार द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तरा ।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधै ॥^{१८}**

सिद्धान्त ज्योतिष ही गणित ज्योतिष है। इसे विज्ञान ही समझना चाहिए क्योंकि इसमें निरन्तर खंडन-मंडन चलते रहे, संशोधित होते रहे हैं और नए-नए सिद्धान्त स्थापित किये जाते रहे हैं। जैसे आर्यभट्ट ने ४९९ ई. में पहली बार भूभ्रमण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। वराहमिहिर भले ही बाद में सत्य सिद्ध हुआ। आचार्य लगध ने गणितज्योतिष की प्रशंसा करते हुए इस शास्त्र को सभी वेदाङ्गों में मूर्धन्य माना है। वे कहते हैं-

**यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणित मूर्धनि स्थितम् ॥^{१९}**

श्लोक में आए गणित शब्द से भी स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः वेदाङ्ग ज्योतिष है फलितज्योतिष नहीं।

फलितज्योतिष -

शब्दों का भी एक जीवन होता है, कुछ शब्द अपने जीवन में उन्नति करते हैं तो कुछ अवनति भी करते हैं। ज्योतिष शब्द की भी अवनति हुई है। आज लोक व्यवहार में ज्योतिष का अर्थ हो गया है

फलितज्योतिष। यानि ग्रह, नक्षत्र आदि के आधार पर शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या। लेकिन आरम्भ में अनेक सदियों तक इस शब्द का यह अर्थ नहीं होता था। भारतीय ज्योतिष का सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेदाङ्ग ज्योतिष है। इसका विषय है काल गणना। इसमें गणित के जरिये सूर्य चन्द्र तथा २७ नक्षत्रों पर ही विचार किया गया है। इसमें ग्रह-राशियों एवं सात वारों की कोई चर्चा नहीं है। इसमें राशि वार पर आधारित आज जैसे फलित ज्योतिष की चर्चा नहीं है और उसमें ज्योतिष शब्द स्पष्टतः गणित का सूचक है। कालान्तर में ज्योतिष तीन भागों में विभक्त हो गया- सिद्धान्त, संहिता, व होरा।^{२०} वराहमिहिर के समय (छठी शताब्दी) तक स्पष्ट रूप से तीन भागों में विभक्त हो चुका था। वराह ने तीनों ही स्कन्धों पर ग्रन्थ रचना की है।^{२१} सिद्धान्त का ही नामान्तर गणित ज्योतिष है, जो वेदाङ्ग है। संहिता शास्त्र में सामूहिक रूप से फल का कथन किया जाता है व होराशास्त्र (जातक शास्त्र) में जातक के जन्म कालीन ग्रह, नक्षत्र आदि के आधार पर जन्मकुण्डली बनाकर फल कथन किया जाता है। दोनों में फल कथन होने से इनका अन्तर्भाव फलितज्योतिष में हो जाता है।^{२२}

ऐसा नहीं है कि वराहमिहिर के समय में ही फलितज्योतिष का अविर्भाव हुआ। इससे पहले भी काफी समय से पूर्व अस्तित्व में आ चुका था। किन्तु इसको निन्दित समझा जाता था। भारत रत्न डॉ.पी.वी. काणे 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में लिखते हैं- ईसा से कई शताब्दियों पूर्व वे लोग निन्दित समझे जाते थे, जो फलितज्योतिष द्वारा जीविका चलाते थे।^{२३}

महर्षि मनु ने नक्षत्र विद्या से जीविका चलाने वाले को निम्नकोटि का ब्राह्मण कहा है।^{२४} उन्होंने उत्पातो, शारीरिक गतिविधियों (आँख फाडना आदि) नक्षत्रविद्या व हाथ देखना आदि के द्वारा जीविका चलाने की मनाही की है। यथा-

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।

नानुशास्नवादां भिक्षां लिप्यते कर्हिचित् ॥^{२५}

बौद्धों के पालीग्रन्थ दीर्घनिकाय में भविष्य-कथन को घृणित पेशा माना जाता है। कुछ

ब्राह्मण व श्रमण घृणितपेशों से अपनी जीविका चलाते हैं और भयभीत होकर जो भोजन उन्हें दिया जाता है उसका सेवन करते हैं। वे कहते हैं - 'सूर्यग्रहण होने वाला है' 'चन्द्रग्रहण होने वाला है' नक्षत्रों की युति होगी, सूर्य व चन्द्र सही दिशा में चलेंगे, गलत दिशा में चलेंगे, नक्षत्र सही मार्ग में चलेंगे, गलत मार्ग में चलेंगे, उल्काओं की वर्षा होगी, चारों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठेंगी, भूकम्प आएगा, सूर्य व चन्द्र नक्षत्र गलत दिशाओं में उदित होंगे, जिससे पृथ्वी के सभी प्राणी त्राहि त्राहि करेंगे इत्यादि।^{१६}

आचार्य चाणक्य ने भी नक्षत्र विद्या की अतिनिर्भरता की निन्दा की है। उनके अनुसार जो मूर्ख नक्षत्र-कथनों पर आश्रित रहता है, वह अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता। धन की प्राप्ति के लिए धन ही नक्षत्र है, उसमें चाँद तारे आदि क्या कर सकते हैं।^{१७}

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसा पूर्व की सदियों में कुछ लोग नक्षत्र के आधार पर भविष्यवाणियाँ करने लगे थे। यह भी स्पष्ट है कि उस समय ग्रहों, राशियों व तारों पर आधारित फलितज्योतिष अस्तित्व में नहीं आया था और न ही कुण्डलियाँ बनती थी। भारतरत्न डॉ. पी. वी. काणे 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में लिखते हैं- ईसा से कई शताब्दियों पूर्व वैदिक एवं घरेलु कृत्यों के लिए केवल शुभ नक्षत्र का निरीक्षण होता था। किसी तिथि का अथवा सप्ताह के दिनों का भी उल्लेख नहीं दिया जाता था। राशियाँ भी वर्णित नहीं हैं और ग्रहों की ओर भी संकेत नहीं है, केवल शुभ नक्षत्र में कृत्य सम्पादन की व्यवस्था है।..... प्रारम्भिक युगों में कोई ऐसे नियम नहीं बन पाए थे जिनसे ग्रहों का किसी नक्षत्र में प्रभाव जाना जा सके और न कुण्डलियाँ ही बनती थी, जिनमें ग्रहों, नक्षत्रों एवं राशियों के घर आदि बने हों।^{१८}

फलितज्योतिष वैज्ञानिक सिद्धांतों और नियमों पर आधारित नहीं है। अगर एक जन्मकुण्डली चार ज्योतिषों को दिखाई जाए तो चार अनुमान प्राप्त होंगे। वैज्ञानिक निष्कर्ष इस तरह व्यक्तिगत नहीं होते। फलितज्योतिष के मिथ्यात्व को बताने के लिए स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने सत्यार्थभास्कर में एक कथानक

उद्धृत किया है- आस्टन के प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता डॉ. बाल्टन फ्रैकलिन को यह जानने की इच्छा हुई कि फलितज्योतिष वालों की बातें कहाँ तक ठीक निकलती हैं। उन्होंने अपने जन्म का वर्ष, दिन, समय, नक्षत्र आदि का ठीक-ठीक ब्योरा लिखकर छह ज्योतिषियों को भेजा। सबसे एक ही प्रश्न किया कि मेरी शादी कब हागी? उन ज्योतिषियों ने भिन्न-भिन्न समय बताए, किन्तु यह किसी ने नहीं बताया कि शादी तो पहले से ही हो चुकी है।^{१९}

जन्मकुण्डली बनाने व राशि निर्धारित करने में ज्योतिषि अनेक अवैज्ञानिक बातों को स्वीकार करते हैं। सूर्य, चन्द्र, राहु व केतु को ग्रह मानते हैं। किन्तु सूर्य एक तारा है, चन्द्र उपग्रह है, राहु-केतु आकाश के काल्पनिक बिन्दु हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि राहु-केतु जैसे काल्पनिक बिन्दुओं को तो राशियों में स्थान दिया गया है, लेकिन जिस पृथ्वी पर मानव का निवास है, जिसकी परिस्थितियाँ मानव को सबसे ज्यादा प्रभावित करती हैं, उसके लिए कुण्डली में कोई स्थान नहीं है।

जिस प्रकार यह पृथ्वी जड़ है, वैसे ही सूर्य, चन्द्र, मंगल व शनि आदि भी जड़ हैं। जड़ पदार्थ कैसे व्यक्ति को सुखी व दुखी कर सकते हैं? सुख दुख तो मनुष्य के अपने कर्म का परिणाम है। कर्मों का फल भोगना ही पडता है- **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**

ग्रह जड़ हैं तो फिर फलितज्योतिष का ग्रहशान्ति कर्मकाण्ड भी व्यर्थ है। यदि अनुष्ठानों से करोड़ों किलोमीटर दूर के ग्रहों को शान्त किया जा सकता है तो इसी धरती पर दुष्टों का दमन करके गरीबी, आतंकवाद व अन्याय का उन्मूलन क्यों नहीं किया जाता। 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में डॉ. पी. वी. काणे लिखते हैं- "ऐसा विश्वास करना कि ग्रहों के कारण ही जीवन गतियाँ रूप धारण करती जाती हैं, बड़ी भयंकर धारणा होगी, प्रत्युत उसने ग्रहों के प्रभाव में आकर ही यह अपराध किया है, जिसमें उसका कोई बल या अधिकार नहीं है, वह तो असहाय रहा है, उसका क्या दोष है, आदि।"^{२०}

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमास:-२०७३)

६

एक ही समय, एक ही अस्पताल में पैदा हुए बालकों पर एक-सा ग्रह-नक्षत्रों का परिणाम देखने को नहीं मिलता। महाभारत के वनपर्व में कहा है कि बहुत से लोग एक ही नक्षत्र में पैदा होते हैं परन्तु अपने-अपने कर्मानुसार उन्हें अलग फल मिलते हैं^{२१} कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि भिन्न-भिन्न आयु, राशि व जन्मकुण्डली वालों का एक ही परिणाम होता है। जापान के हिरोशिमा व नागाशाकी नगरों पर क्रमशः ६ और ९ अगस्त १९४५ को डालें परमाणु बमों से व अभी नेपाल में आए भूकम्प से एक साथ में जो लोग मरें, उन सबका जन्म एक समय नहीं हुआ था और न ही सबकी राशि व कुण्डली एक जैसी थी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जन्म-पत्र को शोक पत्र कहा है क्योंकि बालक का जन्म होता है तो सब खुश होते हैं किन्तु जब ज्योतिषी धनप्राप्ति के कामना से जन्म पत्री बनाकर बताता है कि अमुक-अमुक ग्रह अच्छे हैं, अमुक-अमुक क्रूर हैं, और अमुक ग्रह के योग में बालक का मृत्यु योग है आदि, तभी माता-पिता शोकसागर में डूब जाते हैं।^{२२}

इसप्रकार उपर्युक्त तथ्यों व विवरणों के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि ज्योतिष यानि सिद्धान्तज्योतिष (गणितीयज्योतिष) है वह वेदार्थ के अबोध में उपयोगी होने से व वैदिक कृत्यों के सम्पादन हेतु काल ज्ञान कराने की वजह से वेदाङ्ग है तथा जो फलितज्योतिष है वह अवैज्ञानिक एवं प्रवञ्चना मात्र है। घर बैठे-बिठाए लोगों को अकारण ही विपत्ति में फसाने वाला है।

सन्दर्भसूची :-

- साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो वभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्-कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्सम्पादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे विल्मग्रहणायेयं ग्रन्थ समाम्नासिषु वेदं च वेदाङ्गानि च। (निरुक्त, यास्कभूमिका खण्ड-१९)
- छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।। (पाणिनीय शिक्षा-४१)
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीय शिक्षा-४२)

षडङ्गो वेदः। (आपस्तम्बधर्मसूत्र-२/४/१०)

- छन्दः कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं शिक्षा-छन्दोविचितिरिति।
(आपस्तम्बधर्मसूत्र-२/४/११)
- ज्योतिष विकास, प्रकार और ज्योतिर्विद् (लेखक गुणाकरमुणे) पृ.-१५ से उद्धृत।
- याजुषज्यौतिषम्-३।
- शतपथब्राह्मण-१/१/२/१
- सत्यार्थभास्कर (ले. स्वामी विद्यानन्द सरस्वती) पृ.-२३२ से उद्धृत।
- सिद्धान्तशिरोमणि-६
- याजुषज्यौतिषम्-५
- सिद्धान्त-संहिता-होरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्। नारदसंहिता-१/४
- ज्योतिष, विकास प्रकार और ज्योतिर्विद्, पृ.-९
- नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृ.-९० के आधार पर
- धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-४, अध्याय-१५, पृ.-२६३
- मनुस्मृति-१३/६२
- मनुस्मृति-६/५०
- दीर्घनिकाय, ब्रह्मजालसुत्त।
- नक्षत्रमतिप्रच्छन्नं वालमर्थोऽति वर्तते।
अर्थोऽर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः।।
(अर्थशास्त्र-९/४)
- धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ अध्याय-१५, पृ.-२६६, २६२
- सत्यार्थभास्कर, पृ.-२६३
- धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ भाग, अध्याय-१७, पृ.-३०९
- बहवः संप्रदृश्यन्ते तुल्यनक्षत्रमंगला। महत्तुफलवैषम्यं दृश्यते कर्मसंगिषु। महाभारत, वनपर्व, अध्याय-२०९
- सत्यार्थप्रकाश, द्वितीयसमुल्लास पर आधारित।

-सम्पादक : हरि-प्रभा

हरयाणा संस्कृत अकादमी,

पञ्चकुला (हरयाणा)

पर्यावरण-शुद्धि में यज्ञ की वैज्ञानिक भूमिका

□ रक्षिता, शोधच्छात्रा...✍

समस्त जीव, वनस्पति-जगत् और मनुष्य जीवन के परस्पर सामंजस्य का, प्राचीन भारत के ऋषि तपोवन में अद्भुत परिचय मिलता है। भारत के ऋषि मुनियों द्वारा विरचित वेदों, पुराणों, उपनिषदों तथा अनेक धार्मिक ग्रन्थों में हमें पर्यावरण का चित्रण प्राप्त होता है। पर्यावरण और जीवन का संबंध सदियों पुराना है। पर्यावरण और जीवन का एक-दूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध है कि पर्यावरण के बिना जीवन नहीं हो सकता और जीवन के बिना पर्यावरण नहीं हो सकता।

यदि पर्यावरण शुद्ध और संतुलित है तो उस पर्यावरण में रहने वाले लोग मानसिक, शारीरिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक रूप से सुसमृद्ध रहते हैं। वैश्वीकरण, उदारीकरण, औद्योगीकरण के युग में हमारा पर्यावरण कितना प्रदूषित हुआ है, यह किसी से छिपा नहीं है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या इतनी भयावह हो गयी है कि आज पर्यावरण प्रदूषण के निवारण को लेकर विश्व स्तर पर^१ गम्भीर चिंतन एवं शोधकार्य व्यापक रूप से किये जा रहे हैं।

प्रायः देखा जाता है कि जब हम विपत्ति में पड़ते हैं तब हम अपने वरिष्ठों तथा प्राचीन ग्रन्थों से समाधान का मार्ग जानने का प्रयास करते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के निवारण के लिए अनेक सूत्र वेदों में उपलब्ध है, जिनके अवलोकन तथा आचरण से हम इस समस्या से मुक्ति पा सकते हैं। पर्यावरण संतुलन एवं उसकी सुरक्षा की दृष्टि से यदि वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन किया जाए तो यह तथ्य निकलकर आता है कि तात्कालिक ऋषिजन पर्यावरण के प्रति अधिक सचेत थे। पर्यावरण प्रदूषण के गम्भीर खतरों से किसी न किसी रूप में वे अवश्य परिचित थे। अन्यथा सभी प्रकार के सुखों के मूलभूत साधन रूप विविध यज्ञों एवं उनकी

सूक्ष्म प्रक्रियाओं से परिचित न होते। किस औषधि का क्या लाभ है? उससे पर्यावरण कैसे शुद्ध होता है? जीवन और प्रकृति का क्या संबंध है? पारिस्थितिक संतुलन कैसे बनाया जाए? यह सब वे भलीभांति जानते थे। याज्ञिक प्रक्रिया का सूक्ष्म विवेचन, गहन सतर्कता और प्रकृति पर उसका प्रभाव ये सब पर्यावरण चेतना के ठोस प्रमाण हैं।

वेद का कथन है कि 'जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदःशतम् प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्'^२ यदि हमारी पर्यावरण चेतना लुप्त रहेगी तो हम सौ साल तक कैसे जियेंगे? भौतिक विज्ञान के नये-नये आविष्कार अवश्य ही नित्य नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के परिचायक हैं, तथापि इनमें प्रकृति के संघटकों के प्रति वैदिक सद्भाव का सर्वथा अभाव है। भारतीय मनीषा सृष्टि के आरम्भ से ही प्राणिमात्र के कल्याण के लिए सतत जागरूक एवं चिंतनशील रही है। यह हमारी भारतीय संस्कृति का मूल उद्घोष भी है - 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'।

सुखी एवं स्वस्थ रहने के लिए हमें सभी प्रकार की वनस्पतियाँ पृथ्वी पर मिलती हैं, अतः पृथ्वी के पर्यावरण को शुद्ध एवं स्वच्छ रखना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। अथर्व वेद के एक मन्त्र में भूमि को माता कहा गया है और हम इसके पुत्र हैं।^३ अतः पुत्र का कर्तव्य बन जाता है कि वह पृथ्वी माता को प्रदूषित होने से बचाये।

यज्ञ की भूमिका : वातावरण की शुद्धि के लिए वैदिक काल में यज्ञों का विधान था। समस्त पर्यावरण शोधकों में यज्ञ का प्रमुख स्थान है। यज्ञ को यजुर्वेद की दृष्टि से सृष्टि का केंद्र भी कहा गया है।^४ यज्ञ का औषधीय धूम पर्यावरण को शुद्ध करता है। वेदों में उल्लेख आता है कि यदि अग्नि को जलाकर

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमास:-२०७३)

११

वैदिक सभ्यता है सिन्धु घाटी

□ राजेश आर्य...✍

प्रिय पाठकवृन्द! अंग्रेजों के आगमन से भारत में कई विषय नये ज्ञात हुए और कई भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हुईं। उन्हीं में से एक बड़ी भयंकर है-आर्यों के आक्रमणकारी होने की। कितने धूर्त थे। पाश्चात्य लेखक जो भारत (उत्तर व दक्षिण) में फूट डालने के लिए आर्य और द्रविड जातियों की कल्पना कर आर्यों को आक्रमणकारी प्रचारित कर गये और हमारे प्रबुद्ध लेखकों की शक्ति व समय आज भी इस मिथ्या कल्पना को असत्य सिद्ध करने में ही व्यर्थ जा रहा है। इस षडयन्त्र का प्रभाव देखिए कि लोकमान्य तिलक व जवाहर लाल नेहरू जैसे देशभक्त भी भ्रमित होकर आर्यों अर्थात् स्वयं को विदेशी मानने लगे। यद्यपि स्वामी दयानन्द १८५७ ई. में इस विचार धारा का खण्डन कर चुके थे, पर दुर्भाग्य से तिलक जी अपने गुरु विष्णु शास्त्री चिपलूनकर (जो स्वामी दयानन्द के घोर विरोधी थे) के प्रति श्रद्धा के कारण स्वामी दयानन्द के मत को नहीं मान पाये, जबकि पाश्चात्यों के वेद भाष्यों को मानकर उत्तरी ध्रुव को आर्यों की मूल भूमि लिख दिया। नेहरू जी तो थे ही भारतीय (वैदिक) परम्परा के विरोधी सांस्कृतिक स्तर पर मुसलमान और अंग्रेज।

फूट डालो और राज करो की नीति पर चलते हुए अंग्रेजों (एडवर्ड टॉमस आदि) ने आर्य (जो शब्द वेद, रामायण, महाभारत आदि में विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है) जाती की कल्पना की और १८५६ ई. में काल्डवेल ने द्रविड जाती की भी कल्पना कर अपने सहयोगियों के साथ मिलकर द्रविड भाषा का व्याकरण तैयार किया। उन लोगों ने दक्षिण वालों के दिमाक में यह भी अच्छी तरह बिठा दिया कि उत्तर भारत वाले हिन्दी भाषी लोग तुम्हारे परम्परागत शत्रु हैं जिन्होंने तुम पर अनेक प्रकार के अत्याचार करके तुम्हें दक्षिण की तरफ धकेल दिया। १९२१-२२ ई. में हडप्पा और मोहन

जोदड़ो की खुदाई हुई तो धूर्तों ने उसे द्रविड सभ्यता कहकर उस पर आर्यों के आक्रमण का प्रचार किया अर्थात् एक झूठ को सत्य कहने के लिए झूठ बोला गया, और बार-बार बोला गया झूठ कुछ समय बाद सत्य ही लगने लगता है।

इसके परिणाम स्वरूप उत्तर व दक्षिण भारत में विरोध बढ़ गया जो अभी तक भी (हिन्दी का विरोध) जारी है। अंग्रेज यही तो चाहते थे पर स्वतन्त्र देश की सरकार को तो यह समझना चाहिए। फिर भी वही झूठ क्यों लिखा-पढा जा रहा है? सिन्धु सभ्यता की खुदाई के समय भारत विरोधी लोग दो दलों में बंट गये। कुछ इस सभ्यता को वैदिक सभ्यता से प्राचीन मानकर (ताकि आर्यों की सभ्यता प्राचीन सिद्ध न हो) इसे प्राकृत आपदा से नष्ट हुई बताने लगे। दूसरे इसे आर्यों के आक्रमण से नष्ट हुई बताने लगे, ताकि आर्य आक्रमणकारी थे, इस कल्पना पर मोहर लग सके। मोटिमर हिवलर ने इसका मुख्यता से प्रचार किया। पुरातत्ववेत्ता श्रीधर वाकणकर ने हिवलर को आर्यों के आक्रमण को प्रमाणित करने की चुनौति दी, तो वह निरुत्तर हो गया और अपनी बात वापस ले ली, पर प्रचारका विष इतना फैल चुका था कि देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय व राम स्वामी पणिकर जैसे लोग इसी बात को लेकर उत्तर भारत (आर्यों) के विरोध में आन्दोलन करने लगे और आर्य द्रविड का संघर्ष ब्राह्मण शूद्र के रूप में बदल गया। दक्षिण वालों के विरोध के कारण हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई। इससे सिद्ध होता है कि अन्दर का शत्रु बाहर वाले शत्रु से विनाशकारी होता है।

ऊपर के विचारों में दोनों सिन्धु सभ्यता को द्रविड सभ्यता मानते हैं और आर्यों को द्रविडों का दुश्मन। सभ्यता के पतन विषय में मतभेद हैं। यदि बाढ़ आदि किसी प्राकृत आपदा से ये नगर नष्ट हो गये और बाद में

आर्ष-ज्योति: शोधाङ्क: (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमास:-२०७३)

१३

सुरक्षित बचे शेष लोगों ने पुनः उनके ऊपर नगर बसा लिए तो वे पहले वालों के दुश्मन या विदेशी कैसे माने जायेंगे? क्या पुनः नगर बसाने के लिए विदेशियों का आना अनिवार्य है? फिर मरने वालों की परम्पराएँ समान क्यों हैं?

यदि आर्यों को आक्रमणकारी माना जाये तो भी यह सम्भव नहीं है कि थोड़े समय में कुछ आर्य समस्त भारत के द्रविडों को मार भगा देते। और इस तरह उसे आबाद कर देते कि द्रविडों का कोई भी चिह्न शेष न रहे। द्रविडों पर आर्यों के आक्रमण को मानो प्रत्यक्ष देखने वाले इतिहासकार यह नहीं बताते कि द्रविडों के देश का क्या नाम था, जिस पर आर्यों ने आक्रमण किया और द्रविडों ने अपने देश का नाम आर्यावर्त क्यों रखने दिया? जैसे शक, हूण, मुस्लिम, आदि आक्रमणकारियों ने मिनांडर, मिहिरगुल, सिकन्दर, सेल्युकस, कासिम, गजनबी, गोरी, तैमूर, बाबर, अब्दाली आदि के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया, क्या कोई इतिहासकार आर्यों के भी आक्रमणकारी नेता का नाम बता सकता है?

और क्या कारण रहा रामायण काल में आर्य राम वनवास के समय दक्षिण भारत में गये तो दक्षिण वालों (तथाकथित द्रविडों) ने उनका विरोध नहीं किया, अपितु उनकी सहायता की? दक्षिण वालों को द्रविड जाति कहने वाले लोग बताएं कि वर्तमान मान्यता के अनुसार अलग-अलग मानी गई (वास्तव में मानव) जातियाँ (वानर-हनुमान, सुग्रीव आदि; राक्षस-रावण, विभीषण आदि; पक्षी-जटायु, सम्पाति आदि) के लिए भी रामायण में राम की तरह आर्य शब्द का प्रयोग क्यों हुआ है? इनकी स्त्रियाँ भी इन्हे 'आर्यपुत्र' क्यों कहती थीं? यदि आर्यों ने द्रविडों पर विजय पाई थी, तो रामायण महाभारत आदि की तरह उस विजय का वर्णन करने के लिए कोई ग्रन्थ क्यों नहीं लिखा अथवा अपने किसी भी ग्रन्थ में उस विजय का उल्लेख क्यों नहीं किया? और द्रविडों के कौन से प्राचीन ग्रन्थ में लिखा है कि वे उत्तर भारत में रहते थे और आर्यों ने उन्हें मार पीटकर दक्षिण

में भगा दिया? क्या कारण हैं कि महाभारत में 'द्रविड' शब्द जाति के रूप में ना होकर पाण्ड्य, उण्डू, केरल, आन्ध्र आदि की तरह देश (स्थान) वाचक है? आर्यों ने अपने साहित्य की इतनी वृद्धि की कि दक्षिण वालों में भी उनका प्रचार है, तो द्रविडों का साहित्य कहाँ गया? उसका उत्तर भारत में प्रचार क्यों नहीं हुआ? और क्या कारण है कि वर्तमान के तथा कथित द्रविडों का इतिहास अगस्त्य व कण्व आदि वैदिक ऋषियों से आरम्भ होता है।

यदि आर्य दक्षिण वालों के दुश्मन थे, तो आर्यों के ग्रन्थ वेदों के एक-एक मात्रा व स्वर को ध्यान में रखकर कंठस्थ करने की परम्परा अभी तक भी दक्षिण भारत में क्यों है? आज भी द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि नाम उन पंडितों के साथ क्यों जुड़ा हुआ है? और दक्षिण भारत लगभग सभी भाषाओं में ५० से ९० प्रतिशत तक संस्कृत के शब्द क्यों हैं? बौद्ध, जैन मत को परास्त कर वेद धर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने वाले शंकराचार्य भक्ति मार्ग का प्रचार करने वाले रामानुजाचार्य, बसवेश्वर, वल्लभाचार्य, स्वामी रामानन्द आदि को क्यों नहीं पता चला कि हमें आर्यों ने मार पीटकर दक्षिण में धकेला था? फिर भी वे आर्यों की परम्परा का प्रचार क्यों करते रहे? और भक्ति भी राम, कृष्ण आदि उत्तर भारत के आर्यों की। इतने प्रचार के बाद भी दक्षिण वाले उत्तर भारत के तीर्थों की यात्रा क्यों करते हैं?

वास्तविकता तो यही है कि आर्यों के प्राचीन साहित्य में उनकी विरोधी या समानता के रूप में कहीं भी द्रविड जाति का उल्लेख नहीं है। वहाँ तो दस्यु (सामाजिक नियम तोड़ने वाला) शब्द मिलता है। वह भी गुण वाचक है जाति वाचक नहीं। द्रविड शब्द महाभारत में (राजसूय यज्ञ से पूर्व सहदेव की दिग्विजय के समय) स्थानवाची है। (कृष्णा और पोलर नदियों के मध्यवर्ती जंगली भाग के दक्षिण में स्थित कारो मंडल का समस्त समुद्री तट जिसकी राजधानी कांची-काजीनरमथी मद्रास से ४२ मील दक्षिण पश्चिम में) उस स्थान के व्यक्ति भी द्रविड कहलाते थे। जैसे- पंजाब बिहार बंगाल

आदिराज्यों के वासी ब्राह्मण आदि सभी पंजाबी बिहारी बंगाली भी कहे जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने आदि शंकराचार्य को द्रविड देशोत्पन्न लिखा है। अर्थात् वे ब्राह्मण थे और द्रविड राज्य के होने के कारण से द्रविड भी कहे जा सकते हैं। भारत के राष्ट्रगान 'जन गण मन' में भी द्रविड शब्द स्थानवाचक है जाति वाचक नहीं।

आज भी वेदों के शुद्ध और विभिन्न प्रकार के पाठ दक्षिण के ब्राह्मण ही करते हैं। और ब्राह्मण आर्यों का मुख्य वर्ण है तो फिर द्रविड ब्राह्मण आदि आर्य क्यों नहीं हैं? हाँ मनुस्मृति (१०-२२) में अवश्य द्रविड जाति का उल्लेख है। पर ये श्लोक प्रक्षिप्त है और उस समय जोड़े गये हैं, जब समाज में विभिन्न जातियाँ बन गई थीं, सम्भवतः पुष्यमित्र शृंग के काल (१५० ई. पू.) में। स्मरण रहे, मनुस्मृति में वर्जित द्रविड जाति आर्यों की विरोधी नहीं अपितु आर्यों के ही एक वर्ण क्षत्रिय (क्षत्रिय ब्राह्मण) से उत्पन्न संतान के रूप में झल्ल, मल्ल, नट आदि की तरह है।

श्री के.वी. रामकृष्ण राव के अनुसार तमिल 'द्रविड' शब्द के प्रयोग से पुरातन काल में पूर्णतया अनभिज्ञ थे। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग आधुनिक काल से ही करना आरम्भ किया है। विशेष रूप से तब, जब युरोपीय विद्वानों का दक्षिण में आगमन हुआ।

१८५६ ई. में काल्डवेल ने जो शरारत की थी, उस पर पानी फेरते हुए सर जॉर्ज कैम्पवेल नामक नृवंश शास्त्र के आधार पर उत्तर और दक्षिण के समाज में कोई विशेष भेद नहीं है। द्रविड नाम की कोई जाति नहीं है। निस्संदेह दक्षिण भारत के लोग शारीरिक गुण, रीति, रिवाज और प्रचार व्यवहार में केवल आर्य हैं।

मिस्टर मयूर ने लिखा है- "जहाँ तक मुझे ज्ञात है, संस्कृत के किसी ग्रन्थ में, यहाँ तक कि प्राचीनतम साहित्य में भी आर्यों के विदेशी होने का संकेत नहीं मिलता।" (आर्यों का आदि देश और- १२०-१२२) फियाडेफिया निवासी डेल्लस ने हिलवर धारणाओं का खण्डन करते हुए लिखा है- "सिन्धु सभ्यता और आक्रमण के बीच के समय में कोई तालमेल नहीं

है। आक्रमण और हत्याकाण्ड के प्रमाण मौजूद नहीं हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को भारतीय मूल अनार्य और सवर्णों को आक्रान्ता मानने वालों का खण्डन करते हुए लिखा है- "यह धारणा गलत है कि आर्य आक्रमणकारियों ने शूद्रों को जीता। आर्यों के बाहर से आने और यहाँ के मूल निवासियों को जीतने कि कहानी के समर्थन में कोई प्रमाण मौजूद नहीं है। भारत ही आर्यों का मूल स्थान था।" (डॉ. अम्बेडकर राइटिंग एण्ड स्पीचेज खण्ड ३ पेज ४२०)

अमेरिका के मानव वैज्ञानिक और पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. जे. मार्क केनोयर का मानना है कि सिन्धु घाटी आर्यों की ही सभ्यता है बहुत से देशी विदेशी विद्वान तथाकथित आर्य व द्रविड जातियों व उसके परस्पर संघर्ष को झूठा सिद्ध कर चुके हैं विश्व प्रसिद्ध मुस्लिम साहित्यकार अनवर शेख आर्यों के आक्रमण को बकवास घोसित कर रहे हैं। जब द्रविड जाति और आर्यों के आक्रमण ही काल्पनिक है। तो सिन्धु सभ्यता अपने आप वैदिक सिद्ध हो गई।

भारतीय तकनीकी संस्थान (आई. आई. टी) के शोधकर्ता आर. बाला सुब्रह्मण्यम् ने बताया कि हडप्पा और मौर्य कालीन दोनों वास्तु शिल्पों में ७६३ सै.मी. के माप का इस्तेमाल होता दिखाता है। भारत में इसे पारम्परिक तौर पर अंगुलम के नाम से जानते हैं। उन्होंने कहा कि सिन्धु के किनारे बसने वाले लोग गंगा के किनारे बसने वाले लोग एक थे। अप्रत्यक्ष तौर पर मैं कहूँगा कि आर्यों के आक्रमण का सिद्धान्त आधार हीन है। (पंजाब केसरी, २८ सितम्बर २००९)

हडप्पा सभ्यता के बाट एक शृंखला में क्रमशः बढ़ते जाते थे। पहले वे १,२,३,४,८ से ६४ तक दोगुणे होते थे। उसके बाद १६० से आगे सोलह के दशमिक गुणजो में ३२०, ६४०, १६००, ६४००, (१६००%४), ८०००० (१६००%५) और १२८००० (१६००%८) होते जाते थे। मजेदार बात तो यह है कि १६ या उसके गुणजो की परम्परा भारत में १९५० के दशक तक चलती रही है। सोलह छटांक का

एक सेर होता था और १६ आने का एक रूपया। (प्राचीन भारत - श्री मकखन लाल)

सिन्धु सभ्यता से प्राप्त मूर्तियों से हडप्पा वासियों के कुछ रीति रिवाजों की जानकारी मिलती है, वे हिन्दूओं (वैदिक के विकृत रूप) में आज भी प्रचलित हैं- पीपल के पेड़, सांड(नंदी), शिवलिंग, कमंडलु (साधुओ का लोटा) योगासन की भिन्न मुद्राएँ, सिंदूर से माँग भरी औरत, अस्थि कलश आदि। कहीं कहीं कंकाल भी मिले हैं। अत्यधिक निर्धनता या लकड़ियों के अभाव मे अब भी कही कही हिन्दू दफनाते हैं। सन्यासियों को भी दफनाया जाता था। कालिबंगन में मिले एक पंक्ति मे सात हवनकुण्ड इसे वैदिक सिद्ध करते हैं। इसके लिए सबसे पुष्ट प्रमाण माहनजोदडो की खुदाई मे प्राप्त एक सील (मुद्रा) है, जो अपनी कहानी स्वयं कह रही है। इस चित्र में एक वृक्ष पर बैठे दो पक्षी दिख रहे हैं, जिनमे एक फल खा रहा है जबकि दूसरा केवल देख रहा है। यह ऋग्वेद (१-१६४-२०) की व्याख्या है कि प्रकृति रूप वृक्ष पर दो पक्षी आत्मा-परमात्मा बैठे हैं। उनमे से एक (जीवात्मा) वृक्ष को खा रहा है जबकि दूसरा केवल देख रहा है।

वैदिक विद्वानों आचार्य उदयवीर व डॉ फतेह सिंह ने इस सील का महत्व इतिहासकारों के सामने रखा, पर नेहरू ने इन्हे आर्य सभ्यता प्रमाणित करने से हतोत्साहित कर दिया। डॉ. फतेह सिंह ने सिन्धु लिपि के ४५ अक्षरों की खोज करके १९६५ ई. तक १५०० सिन्धु मुद्राओं को पढा और निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि सिन्धु मुद्राओं की लिपि पूर्व ब्राह्मी है और भाषा वैदिक संस्कृत। वे सिन्धु लिपि के ओम, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण आदि वैदिक शब्दों को पढ़ सके। उनका यह भी कहना था कि उपनिषदों के अनेक विचारों को सिन्धु मुद्राओं में चित्रित किया गया है।

श्री सत्यपाल शर्मा ने १९६७ ई. में 'सिन्धु सभ्यता के प्राचीन नगर' पुस्तक में सिद्ध किया है कि मोहन जोदडो नगर के निर्माता मुंजवान पर्वत पर रहते थे, यह शब्द ऋग्वेद के मौजवत शब्द से लिया है। जब यहाँ

के कुछ लोग मुंजवान पर्वत को छोड़कर सिन्धु प्रान्त में आकर बस गये, तो वे अपने आपको मुंजान मौंजान अथवा मोहझाल कहने लग गए। अब ये मोहचाल कहे जाते हैं। मोहझाल या मोहजाल ब्राह्मणों में यह परम्परा है कि उसके पूर्वज मंजवान (हिमालय) पर्वत पर रहते थे। अतः वे मौंजायन नाम से प्रसिद्ध हुए। वे व्यापारी थे और सोमलता का व्यापार करते थे। व्यापार करने के लिये जब वे मेहल नदी के तट पर बस गये, तो उनका नदी वाचक नाम मेहले पड़ गया। इस प्रकार मौंजायन, मोहजाल और मोहनजोदडो समानार्थक ही है, जिनका अर्थ है मौज नगर जिनका घर (अयन, आलय और दड़ो) है। (वेदवाणी, भाद्रपद सं.-२०५४ वि.)

नेहरूवादी सरकार और इतिहासकारों ने इन विद्वानों के शोध की उपेक्षा की। अब उपेक्षित वैदिक विद्वानों की मान्यता को आगे बढ़ाते हुए भारत सरकार के वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी श्री विजयेन्द्र जी एक नया शोध ग्रन्थ *The Harppan Script* प्रकाशित हुआ है। प्रा. श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी लिखते हैं कि आशा है विदेशी शासकों के वेतन भोगी इतिहास लेखकों द्वारा कल्पना से खड़ी की गई रेत की दीवार गिरकर रहेगी। (पं. भगवद्दत्त जी, पृ.-१०५)

श्री वाकणकर की मान्यता के आधार पर सिन्धु सभ्यता को सरस्वती सभ्यता नाम दिये जाने की आवाज उठने लगी है, क्योंकि अब तक खोजी गई १४०० बस्तियों में से केवल ८० बस्तियाँ ही सिन्धु और उसकी सहायक नदियों के क्षेत्र में पाई गई हैं। ११०० (८० प्रतिशत) बस्तियाँ सिन्धु और गंगा के बीच के मैदान में स्थित है, जहाँ कभी सरस्वती नदी बहती थी। सरस्वती नदी की खोज (खुदाई) होने से इस विचारधारा को बल मिलेगा कि आर्यों के साहित्य में गंगा-यमुना की तरह वर्णित पावन सरस्वती के तट पर आर्यों की ही बस्तियाँ थीं। सरकार उत्साह दिखाए और देशवासियों का स्वाभिमान जगे, तो हमें विदेशी आक्रमणकारी बताने वाला मिथ्या इतिहास बदल सकता है।

-आर्टा, पानीपत (हरियाणा)

मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था

□ कृ. उमेश्वरी, शोधच्छात्रा...✍

वर्ण शब्द संस्कृत के 'वृ' धातु से लिया गया है। जिसका अर्थ किसी प्रकार के पेशे या कार्य को अपनाना अथवा चुनना है।^१ जैसे कोई कृषि, कोई अध्यापन या कोई सामाजिक कार्य आदि व्यवसाय को अपनाता है जिससे समाज में उसकी उस कार्य या व्यवसाय से एक अलग पहचान बनती है। कृषि करने वाला कृषक (किसान) अध्यापन करने वाला अध्यापक एवं सामाजिक कार्य करने वाला समाज सेवक के रूप में जाना जाता है। वर्ण शब्द के विषय में महर्षि दयानंद लिखते हैं कि जो वर्ण करने योग्य हो अथवा गुण-कर्म को देखकर जिसका योग्यता के अनुसार वर्ण (वरण) किया जाता है, वह वर्ण कहलाता है।

वर्णो वृणोतेरिति निरुक्तप्रामाण्याद् वरणीया वरीतुमर्हाः। गुणकर्माणि च दृष्ट्वा यथायोग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णाः ॥^२

डॉ. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी के अनुसार, ऋग्वेद में वर्ण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग रंग तथा आलोक के अर्थ में किया गया है।^३

भारतीय साहित्य में वर्ण-व्यवस्था का प्रथम संकेत ऋग्वेद में मिलता है। इसमें रूपक के द्वारा समाज का विभाजन चार वर्णों में विभाजित कर एक पुरुष के रूप में कल्पना की गयी है। मानव समाज को चार भागों में विभाजित कर उसे धार्मिक मान्यता दी गयी है।^४ जिस से समाज सुव्यवस्थित रहे। मनु वेद को ही धर्म का मूल मानते हैं और उनकी मनुस्मृति भी वेदानुकूल है।^५ मनु भी वेदों के समान वर्ण का आधार कर्म ही मानते हैं।

मनु वर्णव्यवस्था का निर्धारण मूलतः कर्म से मानते हैं जन्म से नहीं। किसी भी वर्ण में उत्पन्न बालक को माता-पिता अपने वर्ण या अन्य किसी भी वर्ण में दीक्षित करा सकते हैं, किन्तु शैक्षणिक काल में अन्ततः

वर्ण का निश्चय उसके गुण, कर्म, स्वभाव-संस्कार आदि के आधार पर उसमें परिवर्तन हो सकता है।^६ मनु का कथन है कि श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ कर्मों के अनुसार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है, अर्थात् गुण कर्मों के अनुकूल कोई ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हो सकता है। इसी प्रकार शूद्र के घर में उत्पन्न भी जो उत्तम गुणयुक्त हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य हो सकता है। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य का भी वर्ण परिवर्तन कर्म के आधार पर हो सकता है।

**शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥^७**

वेदों के समान ही मनु ने ही समाज का विभाजन चार वर्णों में विभाजित एक पुरुष के रूप में माना है और कहा है कि समाज की विशेष वृद्धि और समृद्धि, प्रगति एवं शान्ति के लिए ही उस परमात्मा ने मुख, बाहु, जंघा और पैर के गुणों की तुलना के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण को निर्मित किया है।^८ जो मनुष्य अपने कुल को उत्तम करना चाहता है वह नीच दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से दूर रहे और सदैव उत्तम गुण एवं कर्म वाले पुरुषों से संगति करे।^९ क्योंकि जो सदा दृढ़कारी कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय है और सदैव क्रूर, हिंसक, दुष्टचारी पुरुषों से दूर रहता है ऐसा धर्मात्मा सब के मन को जीत कर विद्यादि दान से सुख को प्राप्त करता है।^{१०}

मनु ने वेदों के आधार पर वर्णव्यवस्था का विधि तान किया है। वर्णों के नामों की व्युत्पत्ति से वर्णों के कर्मों का बोध होता है। जिस शब्द से जो भाव निकलता है वही उस वर्ण का प्रमुख कर्म है। उन कर्मों को अपनाने से ही व्यक्ति उस वर्ण का अधिकारी बनता है।^{११} ब्राह्मण वर्ण के कर्म बताते हुए मनु कहते हैं। कि

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमासः-२०७३)

१७

ब्राह्मणों को पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना लेना ये मुख्य कर्म हैं। निष्कपट भाव से पुरुष सभी को शिक्षा प्रदान करे। इनमें से पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना ये मनुष्य के धार्मिक कर्म हैं और पढ़ाना, यज्ञ करना एवं दान लेना जीविका है।^{१२२} अर्थात् इनके माध्यम से व्यक्ति अपनी जीविका चलाए और सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करे। प्रज्ञा की रक्षा करना, सुपात्रों को विद्या, सुवर्ण आदि देना, प्रज्ञा को अभयदान देना अर्थात् प्रज्ञा की रक्षा करना, विभिन्न विषयों में अनासक्त होके जितेन्द्रिय रहना, लोभ आदि से दूर, सुशीलता आदि शुभ कर्मों में क्षत्रिय को प्रवृत्त रहना चाहिए।^{१२३} गाय आदि पशुओं का पालन करना। विद्या धर्म की वृद्धि के लिए धन व्यय करना वेदादि को पढ़ना, यज्ञादि धार्मिक कार्यों को करना, सब प्रकार के व्यापार करना। उचित प्रकार से सभी के साथ लेन-देन करना ये सब वैश्य के कर्म हैं।^{१२४}

शूद्र के विषय में मनु कहते हैं कि जो व्यक्ति उपनयन में दीक्षित हो कर अर्थात् गुरु के पास जाकर वेदादि का अध्ययन करने पर भी ज्ञान प्राप्त न कर सका हो जिसका वेदाध्ययन रूपी दूसरा जन्म न हुआ हो वह शूद्र है। क्योंकि द्विज उसको कहते हैं जिसका अध्ययनरूपी दूसरा ब्रह्मजन्म उपनयन के समय होता है।^{१२५} अतः जो विद्याहीन अर्थात् जिसको पढ़ने से विद्या न आ सके, शरीर से पुष्ट, सेवा में कुशल हो, ऐसे शूद्र को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों की निन्दा रहित होकर प्रेमपूर्वक सेवा करनी चाहिए।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषमनसूयया ॥^{१२६}

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामर्थ्य एवं योग्यता के अनुसार काम करना चाहिए। अपने धर्म कर्मों का पालन न करने पर कोई भी व्यक्ति शूद्र बन जाता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वेदादि का अध्ययन न करके अन्य शास्त्र में श्रम करता है वह जीवित ही अपने वंश सहित शूद्रपन को प्राप्त हो जाता है।^{१२७} वेदाध्ययन से पूर्व बालक का उपनयन संस्कार

करवाया जाता है। मनु ने सभी वर्णों के लिए अलग-अलग समय उपनयन संस्कार के लिए बताया है। ब्राह्मण वर्ण के इच्छुक का उपनयन संस्कार गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय वर्ण का गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में उपनयन संस्कार करवाना चाहिए।^{१२८} यदि किसी को शीघ्र विद्या, बल और व्यवहार अर्थात् कोई शीघ्र शिक्षा प्राप्त करना चाहता हो तो ब्राह्मण का उपनयन संस्कार जन्म से पांचवें वर्ष में, क्षत्रिय का जन्म से छठें वर्ष में और वैश्य का जन्म से आठवें वर्ष में उपनयन करवाना चाहिए।^{१२९} निर्धारित समय पर उपनयन संस्कार न होने पर ये तीनों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पतित कहलाते हैं।^{१३०} और द्विजों को इन कभी भी इन पतितों के साथ विद्याध्ययन-अध्यापन एवं विवाह-सम्बन्धी कोई व्यवहार नहीं करना चाहिए।^{१३१} यदि स्वाश्रित स्त्री या शूद्र भी कोई श्रेष्ठ कार्य करें तो उनसे शिक्षा लेकर उस पर आचरण करना चाहिए।^{१३२} मनु स्मृति में काव्यदान के अधिकारी ज्ञानोपनिष्ठ ब्राह्मण के लिए द्विज शब्द का प्रयोग किया है।

एष्वथेषु पशूहिंसन्सेदतत्वार्थद् द्विजः।

आत्मनं च पशूं चैव गमयत्युत्तमं गतिम् ॥^{१३३}

परन्तु कुछ स्थानों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य तीनों वर्णों के लिए ब्राह्मण शब्द का प्रयोग किया गया है।^{१३४} अपने कर्मों में लगे हुए ब्राह्मण प्रजापत्य लोक के अधिकारी होते हैं। जो क्षत्रिय संग्राम में पलायन नहीं करता अर्थात् क्षत्रिय धर्म का पालन करता है वह इन्द्रलोक को प्राप्त करता है। स्वधर्म के लिए विहित कर्म करने वाला वैश्य मारुतलोक को प्राप्त करता है तथा धर्म का पालन करता हुआ शूद्र गांधर्वलोक को प्राप्त होता है।^{१३५}

इस प्रकार मनु ने कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था बतायी है। व्यक्ति अपने कर्मों से ही वर्ण निर्धारित करता है। जन्म से न तो कोई ब्राह्मण है, न क्षत्रिय एवं वैश्य न ही शूद्र। व्यक्ति के कर्म ही उसे ब्राह्मण या शूद्र बनाते हैं।

- संस्कृतविभाग,

एम.बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. धर्मशास्त्रीय शूद्र अवधारणा पृ. १४२
२. ऋ. भा. भू. वर्णाश्रमधर्मविषय
३. डॉ. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ पृ. ३९
४. धर्मशास्त्रीय शूद्र अवधारणा पृ. १४३
५. मनुस्मृति पृ. ७० (मनुस्मृति का पुनर्मुल्यांकन)
६. मनुस्मृति तृतीय अध्याय (भूमिका) पृ. ७७
७. मनुस्मृति १०-६५
८. लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ - मनु १.३१
९. उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥ मनु. ४.२४४
१०. दृढकारी मृदुर्दान्तः कू राचारैरतवसन्।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ मनु. ४.२४६
११. मनुस्मृति (प्रथम अध्याय) पृ. ५४
१२. अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु. १.८८
१३. प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च।
विषये वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥
१४. पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्वथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च। मनु. १. ९०
१५. मनुस्मृति प्रथम अध्याय प. ५९
१६. मनुस्मृति १.९१
१७. योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ मनु. २.१४३
१८. गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादिकादशे राज्ञो गर्भान्तु द्वादशे विषः ॥ मनु. २.११
१९. मनुस्मृति २.१२
२०. अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता ब्राह्म्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ मनु. २.१४
२१. नैतेरपूतैर्विधिवदापद्यापि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मण्यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणः सह ॥ मनु. २.१५
२२. मनुस्मृति २.२१३
२३. मनु स्मृति ५.४२
२४. धर्मशास्त्रीय शूद्र अवधारणा प.१४६
२५. धर्मशास्त्रीय शूद्र अवधारणा प.१४६

पूज्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी की अमेरिका यात्रा सम्पन्न

श्रीमद्दयानन्द वेदार्थ महाविद्यालय-न्यास के संचालक एवं अनेक आर्ष गुरुकुलों के संस्थापक गुरुवर्य स्वामी प्रणवानन्द महाराज वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसारार्थ १० जुलाई से ८ अगस्त पर्यन्त अमेरिका यात्रा पर रहे। स्वामी जी ने शिकागो आर्यसमाज व आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका द्वारा आयोजित आर्य महासम्मेलन में अपना आशीर्वाद दिया तथा साथ ही शिकागो, ह्युस्टन, अट्लान्टा, न्यूयार्क आदि स्थानों पर वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। यात्रा के दौरान भारतीय मूल के डॉ. सुखदेव चन्द्र सोनी (कैंसर रोग विशेषज्ञ तथा आर्य नेता) के जन्म दिवस का कार्यक्रम स्वामी जी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। डॉ. सोनी जी ने ही स्वामी जी का कैंसर रोग का उपचार किया था। भारतीय मूल के वैदिकधर्मावलम्बी आर्यमहानुभाव स्वामी जी के आगमन से अत्यन्त उत्साहित हुए, साथ निरन्तर अमेरिका आने का निवेदन किया। ९ अगस्त को स्वामी जी के आगमन पर समस्त गुरुकुलवासियों ने तथा आर्यजनों ने स्वागत किया।

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमासः-२०७३)

१६

ध्वन्यात्मकशब्दनिरूपणम्

□ डॉ. शुभा सिंहः...✍

का नाम ध्वनिरित्याकांक्षायामुच्यते - ध्वनिर्नाम सा भौतिकी ऊर्जा यया समस्तभूतानां श्रवणेन्द्रियाणि कृत्रिमयान्त्रिकश्रवणेन्द्रियाणि च प्रभावितानि भवन्ति । स च ध्वनिः श्रवणेन्द्रियं कथं सञ्चरतीति द्विधा विचार्यते । किं ध्वन्युत्पादकात् लघवः लघुतराश्च कणाः निर्गत्य श्रोत्रपटहमभिहत्य ध्वनिमुत्पादयन्ति ? किं वा ध्वन्युत्पादकवस्तूनि कम्पनेन वायौ तरङ्गाः श्रोत्रपटहमभिहत्य वीचितरङ्गन्यायेन ध्वनिमनुभावयन्ति ? तत्र द्वितीयोऽनुमानः श्रेयस्तरः यान्त्रिकप्रत्यक्षत्वात्, सर्वदोषराहितत्वात् प्राच्यपौरस्त्यविद्वज्जनस्वीकृतत्वाच्च । प्राच्यास्तु पूर्वत एव वीचितरङ्गन्यायेन ध्वनिश्रवणं कुर्वन्ति ।

ध्वनितरङ्गा अनुदैर्घ्यायान्त्रिकतरङ्गा भवन्ति । इमे तरङ्गाः धनद्रववायव्येष्वसमानरूपेण सर्वान् ध्वनितरङ्गान् श्रोतुं नार्हन्ति तरङ्गाणां विविधशक्तिमत्त्वात् । वैज्ञानिकैर्ध्वनितरङ्गाणां त्रिधा विभागः कृतः - श्रव्याऽपश्रव्यपराश्रव्यभेदात् ।

श्रव्यतरङ्गः (Sonic Waves) - ये पदार्थकणाः श्रव्यतरङ्गानुत्पादयन्ति ते तरङ्गदिशमेव कम्पन्ते । २० साइकिल/सेकेण्ड (20 Cycles/Sec.) मानपर्यन्तमेवावृत्तिश्रव्यध्वनितरङ्गाणां मानवश्रोत्राणि-मस्तिष्काणि च प्रभावयितुं शक्नोति ।

अपश्रव्यतरङ्गः (Infrasonic Waves) श्रव्यतरङ्गावृत्तेरर्थात् २० साइकिल/सेकेण्ड (20 Cycles/Sec.) मानाऽऽवृत्तितो न्यूनास्तरङ्गमानवश्रुतिपथम्प्रभावयितुं न क्षमाः भवन्त्यति-सूक्ष्मत्वात् ।

पराश्रव्यतरङ्ग (Ultrasonic Waves) श्रव्यतरङ्गावृत्तितोऽधिकास्तरङ्गा, अर्थात् २०,००० साइकिल/सेकेण्ड (२०,००० Cycles/Sec.) मानध्वनितरङ्गतोऽधिकास्तरङ्गाः मानवश्रुतिपथं न

प्रभावयितुं समर्थाः भवन्ति, अतिमहत्त्वाद्दीर्घत्वाच्च ।

परमहर्षस्याऽयं विषयो यत् प्राचीनैः ऋषिभिः शब्दस्वरूपतदुत्पत्तिविषये च ये सिद्धान्ताः वर्षसहस्रेभ्यः प्राक् निश्चितास्तेऽद्यापि वैज्ञानिकैस्सत्याप्यन्ते । एतदेव ऋषीणां ऋषित्वं यत्ते यथार्थद्रष्टार आप्ताः त्रिकालदर्शिनश्चाऽऽसन् । को नाम शब्दः ? इत्यत्रोक्तं भगवता पतञ्जलिना-

‘प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः, शब्दं कार्षीः शब्दकार्यं माणवकः इति ध्वनिं कुर्वन्नेवमुच्यते ।

तस्माद् ध्वनिः शब्दः ।^१

अत्र पतञ्जलिना ध्वनिरेव शब्द इति व्यवस्थापितम् । शब्दोत्पत्तिविषये पाणिनिना शिक्षायां स्पष्टमुक्तम्-

‘आकाशवायुप्रभवः शरीरात् समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः । स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णात्त्वमागच्छति यः स शब्दः ।’^२

अत्र शब्दोत्पत्तौ वायोः कम्पनमेव कारणमुक्तम् । भर्तृहरेराचार्यस्य मतानुसारेण संसारोऽयं शब्दस्वरूपस्य ब्रह्मणो विवर्तः । विवर्तलक्षणञ्च यथा वेदान्तसारे-

‘अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृतः’ इति ।

अर्थात् अतात्त्विकान्यथाभावो विवर्तः । तादृश एव विवर्तोऽयं संसार शब्दस्येत्याह हरिः -

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥^३

अर्थात् यद् अनादिनिधनम्, उत्पत्तिविनाशरहितम् अत एव नित्यम्, अक्षरम्, व्यापकम्, शब्दतत्त्वं शब्दस्वरूपम् तद् ब्रह्म, यतो जगतः संसारस्य प्रक्रिया - उत्पत्तिस्थितिलयाः अर्थभावेन घटसंसारोऽयं शब्दस्यैव परिणामश्चेत्याह हरिः -

शब्दस्य परिणामोऽयं मित्याम्नायविदो विदुः ।

छन्दोभ्य एव प्रथममेतद् विश्वं व्यवर्तत ॥^४

अर्थात् अयं सर्वोऽपि वाच्यवाचकभेदभिन्नः संसारः शब्दस्य सूक्ष्मस्य वाक्यत्वस्य परिणाम इति आम्नायविदः वेदविदो विदुः जानन्ति, न तु वयं कल्पयामः। अतः प्रथमं सर्गादौ एतद् विश्वं व्यवर्तत व्यजायत इति भावः। यद्यपीयं जिज्ञासा समुदेति यत् प्रथमश्लोके जगत् शब्दविवर्तरूपयोक्तम्, अनेन श्लोकेन तु परिणामतयोच्यते। तत्र कथं द्वयोर्वादयोस्समन्वय इत्यत्रोच्यते – यत् परारूपां वाचमुद्दिश्य परिणामवाद इति ज्ञाप्यते। भर्तृहरैराचार्यस्य मते शब्दाः नित्याः। तदुक्तं हरिणा –

नित्याः शब्दार्थसम्बन्धाः समाम्नाता महर्षिभिः ।

सूत्राणां चानुतन्त्राणां भाष्याणाञ्च प्रणेतृभिः ॥^५

अर्थात् अष्टाध्यायीसूत्राणां वार्तिकसूत्राणां महाभाष्यस्य च प्रणेतृभिः पाणिनिकात्यायनपतञ्जलिभिः शब्दाः शब्दार्थाः शब्दार्थसम्बन्धाश्च नित्याः समाम्नाताः। तत्र अष्टाध्यायीकृता पाणिनिना 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्'^६ इत्यादिसूत्रैः, वार्तिककृता कात्यायनेन 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'^७ 'सिद्धन्तु नित्यशब्दत्वात्' प्रभृतिभिर्वार्तिकैः, महाभाष्यकृता पतञ्जलिना 'संग्रह एतत् प्राधान्येन परीक्षितं नित्यः शब्दः' 'नित्येषु च शब्देषु कुट्यैरविचालिभिर्वर्णैर्वितव्यमनपायोपजनविकारिभिः'^८ 'सर्वे सर्वपदादेशाः'^९ दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः। एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते।' एक इन्द्र शब्द क्रतुशते^{१०} प्रादुर्भूतः सर्वयागेष्वङ्गं भवति इत्यादिभाष्यैः शब्दानां शब्दार्थानां शब्दार्थसम्बन्धानाञ्च नित्यत्वं कण्ठत एवाऽङ्गीकृतम्।

भर्तृहरैराचार्यस्य मतानुसारेण शब्दस्य द्वैधं स्वरूपं दृश्यते, व्यङ्ग्यव्यञ्जकभेदात्। तथा चोक्तम्–

द्वावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः ।

एको निमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते ॥^{११}

अर्थात् उपादानशब्देषु वाचकशब्देषु मध्ये

व्यङ्ग्यव्यञ्जकरूपौ द्वौ शब्दाविति वैयाकरणानां राद्धान्तः। तत्र एको ध्वनिरूपः शब्दः स्फोटरूपाणां शब्दानाम्प्रकाशकः, अपरो व्यङ्ग्यरूपः स्फोटोऽर्थे अर्थबोधनाय प्रयुज्यते। तदुक्तं 'तपर' सूत्रे भाष्ये–

ध्वनिः स्फोटश्च शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते ।

अल्पो महांश्च केषाञ्चिदुभयं तत् स्वभावतः ॥^{१२}

स्फोटो व्यङ्ग्यः ध्वनिर्व्यञ्जकः। अयमाशयः – प्राकृतवैकृतभेदेन ध्वनिद्विविधः। प्राकृतो ध्वनिः स्फोटव्यञ्जकः वैकृतस्तु द्रुतादिवृत्तिभेदजनकः। तदुक्तम् हरिणा–

शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदे तु वैकृताः ।

ध्वनयः समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैर्न भिद्यते ॥^{१३}

वैकृतास्तु ध्वनयः प्राकृतध्वनिभिः शब्दस्याभिव्यक्तेरूर्ध्वं जायमानाः द्रुतादिवृत्तिभेदे कारणानि भवन्ति। तैर्द्रुतमध्मविलम्बितेतिवृत्तिभेदैः स्फोटस्तु न भिद्यते इति भावः।

कालरहितेऽपि स्फोटे प्राकृतध्वनिगतकालस्य स्फोटे आरोपात् मात्रादिकालः उपाधिभेदेन वृत्तिभेदश्च प्रतीयते। तदुक्तं हरिणा–

स्फोटस्याऽभिन्नकालस्य ध्वनिकालानुपातिनः ।

ग्रहणोपाधिभेदेन वृत्तिभेदं प्रचक्षते ॥

स्वभावभेदान्नित्यत्वे ह्रस्वदीर्घप्लुतादिषु ।

प्राकृतस्य ध्वनेः कालः शब्दस्येत्युपचर्यते ॥^{१४}

अत्रेदं तत्त्वम् – चिद्रूपज्ञानस्य, अत एव नित्यत्वादभिन्नकालस्याऽपि स्थानकरणाभिघात-जन्यस्वाभिव्यञ्जकध्वनि –

आचार्येण भर्तृहरिणाऽस्यैव शब्दस्य जगन्मूलकत्वमपि स्वीकृतम्। तन्मते वाच्यवाचकरूपस्याऽस्य विश्वस्य निबन्धनी वाच्यवाचकभावात्मिका वा शक्तिः शब्देष्वेवाऽऽश्रिता वर्तते। तथाहि–

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्याऽस्य निबन्धनी ।

यन्नेत्रः प्रतिभात्माऽयं भेदरूपः प्रतीयते ॥^{१५}

भर्तृहरैराचार्यस्य मतानुसारेण स्फोटस्य

ककराद्यनेकवर्णव्यक्तिमाध्यमेनाद्यभिव्यक्तिर्भवति । ते वर्णव्यक्तय एव कैश्चिदाचार्यैर्ध्वनित्वेनोक्ताः । तदुक्तं हरिणा -

अनेकव्यक्त्यभिव्यङ्ग्या जातिः स्फोट इति स्मृता ।
कैश्चिद् व्यक्त्या एवाऽस्या ध्वनित्वेन प्रकल्पिताः ॥^{१६}

अत्र 'जाति' पदोपादानेन ज्ञायते यद् भर्तृहरिः जातिस्फोटमेव स्वीकरोति । 'पदे न वर्णां विद्यन्ते'^{१७} इति कारिकया ज्ञायते यत् सोऽखण्डस्फोटं स्वीकरोति । अतो भर्तृहरेराचार्यस्य मते अखण्डवाक्यजातिस्फोट एव स्वीक्रियते, तस्याभिव्यक्तिः ककारादिवर्णव्यक्तिमाध्यमेन भवतीत्यनुसन्धातव्यम् ।^{१८}

लोके सर्वा इति कर्तव्यता - 'इदमेव कर्तव्यमिति ज्ञानम्' शब्दव्यपाश्रयाशब्दश्रितैवेत्याह हरिः -

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥^{१९}

किम्बहुना, लोके सर्वोऽपि व्यवहारशब्दाश्रित एव । ज्ञानस्य शाश्वती नित्या वाग्रूपता यदि निष्क्रामेत् - गच्छेत् तर्हि प्रकाशो ज्ञानं नं प्रकाशेत प्रकाशकाभावात् । यतो हि सा (वाग्रूपता) प्रत्यवमर्शिनी वर्तते । किञ्च वाक् सर्वासु सफलासु क्रियासु देहिनः प्राणिनः प्रवर्तयति, श्वासादिवत्, स्वाभाविकीषु क्रियासु निष्फलासु चोपदिष्टस्य शयानस्य वा हस्तपादादिकम्पनक्रियासु ज्ञानपूर्विकायाः प्रवृत्तेरभावात् । मरणकाले तस्य वाग्रूपस्य चेतनस्योत्क्रान्तौ अभावे त्वयं प्राणी काष्ठकुड्यवद् विसंज्ञो दृश्यते । तदुक्तम्-

वाग्रूपता चेन्निष्क्रामे अवबोधस्य शाश्वती ।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥^{२०}
अर्थक्रियासु वाक् सर्वान् समीहयति देहिनः ।
तदुत्क्रान्तौ विसंज्ञोऽयं दृश्यते
काष्ठकुड्यवत् ॥^{२१}

अतः शब्दस्तावत् प्रतीतपदार्थको ध्वनिः । शब्दतत्त्वं व्यापकं नित्यम् उत्पत्तिविनाशरहितं ब्रह्मस्वरूपमिति वैयाकरणाः । परां वाचमनुसृत्य शब्दस्य विवर्तोऽयं संसारः, पश्यन्तीं वाचमनुसृत्य शब्दस्य परिणामोऽयं

व्यङ्ग्यव्यञ्जकभेदेन द्विधा । ध्वनिरूपः व्यञ्जकः सः स्फोटात्मकशब्दे ह्रस्वत्वादयो भेदा उपाधिवशात् प्रतीयन्ते, लोके सर्वे व्यवहारा शब्दाश्रिता एव, सर्वञ्च ज्ञानं शब्दाश्रितमेवेति तत्त्वम् ।

सन्दर्भसूची:-

१. पतञ्जलि-व्याकरणमहाभाष्यम्, आ.-१, पृ.-७, हरयाणासाहित्यसंस्थानं गुरुकुलं झञ्झरसंस्करणम्, १९६२ ।
२. पाणिनीयशिक्षासूत्रपाठः, सू.-१ । शिक्षासूत्राणि, पृ.-११, प्राच्यविद्याप्रतिष्ठानकाशीसंस्करणम्, सं.-२००५ वि. ।
३. भर्तृहरिः-वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्-१ ।
४. भर्तृहरि-वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम् ।
५. तदेव, ब्रह्मकाण्डम् ।
६. पाणिनि-अष्टाध्यायी-६/३/१०९
७. पतञ्जलि-व्याकरणमहाभाष्यम्-१/१
८. तदेव, १/१ आ.-३, सू.-१
९. तदेव, १/१ आ.-३, सू.-१
१०. तदेव, १/१ आ.-३, सू.-१
११. तदेव, १/१ आ.-५, सू.-२०
१२. तदेव, १/२ आ.-३, सू.-६४
१३. भर्तृहरि-वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्-४४
१४. पतञ्जलि-व्याकरणमहाभाष्यम्, १/१/९ आ., सू.-७०
१५. भर्तृहरि-वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्-७७
१६. तदेव, ब्रह्मकाण्डम् ७५,७६
१७. भर्तृहरि-वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्-११८
१८. तदेव, ब्रह्मकाण्डम्-९३
१९. तदेव, ब्रह्मकाण्डम्-७२
२०. तदेव, ब्रह्मकाण्डम्-१२१
२१. तदेव, ब्रह्मकाण्डम्-१२३
२२. भर्तृहरि-वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्डम्, ११४?
२३. तदेव, ब्रह्मकाण्डम्-१२७
२४. कौण्डभट्टः-वैयाकरणभूषणसारः, स्फोटनिरूपणम्, का.-६४

-एस. आर. डिग्री कॉलेज,
गजपुर, बाँसपार, गोरखपुर

योगवासिष्ठस्य काव्यतत्त्वविमर्शः

□ चन्द्रमणिः, शोधच्छात्रः...✍

श्रीमद्वाल्मीकिप्रणीतं योगवासिष्ठमहारामायणं नाम काव्यं संस्कृतवाङ्मयमहोदधौ मौक्तिकमिव वर्तते। एतत् शब्दार्थगाम्भीर्ययुतं भावाभिव्यक्तिप्रक्रियासहितं योगध्यानज्ञानविज्ञानालयम् आत्मविशुद्धिशिक्षा-प्रचारकञ्चास्ति तस्मात् सर्वलोकानामादृति-पथमारोहति। अस्य काव्यस्यानेकानि नामानि सन्ति - 'योगवासिष्ठः' 'योगवासिष्ठमहारामायणम्' 'महारामायणम्' च^१। ग्रन्थकर्तृविषये विदुषां नैकमत्यं तथापि बहुमतम् आदिकविर्वाल्मीकिम् अस्य प्रणेतेति स्वीकरोति। एतत् प्राचीनभारतीयदर्शनानां संस्कृतेः सभ्यतायाश्च संवाहकं समस्तस्यापि संस्कृतवाङ्मयस्य सारभूतं विद्वज्जनेषु दार्शनिकग्रन्थरूपेण प्रसिद्धम्। अद्यावधि योगवासिष्ठमहारामायणस्य रचनाकालोऽध्या-त्मविद्या दार्शनिकसिद्धान्ता दृष्टान्तोपाख्यानानीत्यादयः अनेके विषया विद्वद्भिर्भारविर्मृश्य सम्यक् प्रतिपादितास्तथापि काव्यस्यास्य काव्यशास्त्रीयमनुशीलनम् अनादृतमेव तिष्ठति। ग्रन्थकारः स्वयमेवास्य प्राध-न्येन काव्यग्रन्थत्वेनोद्घोषङ्करोति-

शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालङ्कारविभूषितम्।

काव्यं रसमयं चारु दृष्टान्तैः प्रतिपादितम्॥^२

प्रस्तुतप्रबन्धे योगवासिष्ठमहारामायणस्य काव्यतत्त्वानां रसालङ्कारगुणानां गुडजिह्विकान्यायेन काव्यतत्त्वविमर्शो विधास्यते यस्मात्काव्येऽस्मिन् काव्यशास्त्रस्याध्येतारोऽध्यापयितारश्च काव्य-तत्त्वावगाहनाय प्रवृत्ता भवेयुरिति प्रस्तुतशोधलेखस्य प्राथमिकमुद्देश्यम्।^३

रसविमर्शः-आचार्यमम्मटाभिमतता नवरसा प्रायशः सर्वैरपि काव्यशास्त्रैः स्वीकृताः- शृङ्गारो हास्यः करुणो रौद्रो वीरो भयानको बीभत्सोऽद्भुतः शान्तश्च।^४ यद्यपि योगवासिष्ठमहारामायणं शान्तरसप्रधानं वर्तते तथापि

हास्यं विहाय प्रायः समेषामपि रसानां कविना सम्यग्वर्णनं कृतम्। शृङ्गाररसः-कृत्रिमेन्द्राहल्यानुरागप्रसङ्गे शृङ्गाररसस्यास्वादनं सहृदयाः कुर्वन्ति।^५ अत्राहिल्येन्द्रौ शृङ्गाररसस्यालम्बनं विभावौ गुप्तस्थानं पुष्पमालाः सुगन्धितद्रव्यविलेपनानि हाराङ्गदादयः चन्द्रिकासहिता रात्री चोद्दीपनं विभावः सुरतानुकूलक्रीडाः ब्राह्मणकुमारानुरक्तता समस्तगुणयुक्तं स्वपतिमपि बह्वमन्यतान्योऽन्यमुखकान्ति-स्मरणं कृष्णकटाक्षतानुभाव इन्द्रियाणां व्याकुलता चात्र व्यभिचारिभावः सन्ति-

ततः सा तेन षिङ्गेन सहेन्द्रेण रतिं ययौ।

कस्मिंश्चित् सदने गुप्ते बहुमाल्यविलेपना॥

हाराङ्गदमनोज्ञेन तरुणी तेन सा तदा।

रतेनावर्जिता वल्ली रसेन मधुना यथा॥

ततस्तदनुरक्ता सा पश्यन्ति तन्मयं जगत्।

न समस्तगुणाकीर्णं भर्तारं बह्वमन्यता॥^६

एवमेव शिखिध्वजचूडालोपाख्याने^७ शृङ्गाररसः कविना वर्णितः। हास्यरसः- योगवासिष्ठस्य षष्ठप्रकरणे पूर्वाद्धे किराटप्रकरणे हास्यस्य किञ्चिच्छाया प्रकटिता कविना। करुणरसः- तृतीये प्रकरणे षोडशसर्गे लीलोपाख्यानं सप्तसप्ततिसर्गे कर्कटीराक्षस्युपाख्यानं चतुर्थप्रकरणे पञ्चदशसर्गे भार्गवोपाख्यानं षष्ठे प्रकरणे शवोपाख्यानं च करुणरसस्य सम्यगुदाहरणानि सन्ति। वीररसः- लीलोपाख्याने नृपविदूरथयुद्धवर्णनप्रसङ्गे सहृदयाः वीररसस्यास्वादनं कुर्वन्ति। एवं चतुर्थप्रकरणे पञ्चविंशतितमसर्गे दामव्यालकटोपाख्यानं षष्ठप्रकरणे षोडशाधिकशततमसर्गे विपश्चिदुपाख्यानं च वीररसस्य सम्यगुदाहरणे स्तः। भयानकरसः- प्रथमे वैराग्यप्रकरणस्य पञ्चविंशतितमे सर्गे कृतान्तविलसितप्रसङ्गे तृतीयोत्पत्तिप्रकरणे पञ्चत्रिंशत्सर्गे लीलोपाख्यानं सङ्ग्रामवर्णनप्रसङ्गे

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमासः-२०७३)

२३

तृतीयोत्पत्तिप्रकरणेऽष्टषष्टितमे सर्गे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनप्रसङ्गे च वर्णनं कविना सम्यक्सूत्रितः। **बीभत्सरसः**:- प्रथमवैराग्यप्रकरणे आधिव्याध्यनेक-क्लेशैर्व्याप्ता चिन्तापरिभवस्थाना च या वृद्धावस्था तस्या दोषा मरणेन क्षणभङ्गुरतृष्णादीनां मूलकारणं यच्छरीरन्तस्य निन्दा अज्ञानक्षुद्रोगापवित्रताचापल्य-दोषदूषिता तिर्यग्जन्तूनामिव बाल्यावस्थाया गर्हा लोभद्वेषमदासूयेर्ष्यादिभिर्दूषितं यद्यौवनं तस्य दोषाः प्रत्यक्षनरकसमूहेनैव सम्पूर्णाङ्ग्यः पुरुषाणां च नरकजन्मप्रदात्र्यो या स्त्रियः तासां शरीरजुगुप्सा च कविना जुगुप्साप्रकृतिकबीभत्सरसस्य परिपाकाय सम्यग्वर्णिताः सन्ति। **अद्भुतरसः**:- तृतीयोत्पत्तिप्रकरणे त्रिंशत्सर्गस्थलीलोपाख्यानं चतुरधिकशततमसर्गस्थेन्द्र-जालोपाख्यानं चाद्भुतरसस्य सम्यगुदाहरणे स्तः। **शान्तरसः**:- प्रथमप्रकरणे वैराग्यप्रकरणे त्रयोदशसर्गात् आरभ्याष्टादशसर्गपर्यन्तं बाल्यावस्थावृद्धावस्थास्त्री-लक्ष्मीत्यादीनां निन्दाप्रसङ्गः शान्तरसस्य सम्यगुदाहरणमस्ति। एवमन्येऽपि रसा यथास्थानं ग्रन्थे द्रष्टव्या अत्र तु विस्तारभयान्न दीयन्ते। **अलङ्कारविमर्शः**:- एवमलङ्क्रियतेनेत्यलङ्कार इति व्युत्पत्त्या शोभावर्धकतत्त्वमलङ्कार इत्यभिधीयते। यथा लोके कटककुण्डलाद्यलङ्काराः कामिनीनां शरीरसौन्दर्यं वर्द्धयन्ति तथैवोपमोत्प्रेक्षादयोऽलङ्काराः कविताकामिन्याः शब्दार्थशरीरसौन्दर्यं वर्द्धयन्ति रसादींश्चोपकुर्वन्ति।^{१८} तेऽलङ्काराः पुनस्त्रिविधा- शब्दालङ्कारा अर्थालङ्कारा उभयालङ्काराश्च। शब्दालङ्कारेषु मुख्यौ द्वावनुप्रासयमकौ अर्थालङ्कारेषु मुख्या उपमात्प्रेक्षारूपकाः सन्ति। सत्स्वपि बहवलङ्कारेषु गुडजिह्विकान्यायेनात्रैषां मुख्यानामेव योगवासिष्ठ-स्थान्युदाहरणानि प्रदर्शयन्ते। शब्दालङ्कारास्तावत्- **अनुप्रासः**:- अनुप्रासो व्यञ्जनमूलकोऽलङ्कारो वर्तते। यदि स्वरव्यञ्जनयोः साम्यं भवति चेत्तत्र नानुप्रासोऽपितु यमकालङ्कार एव ज्ञेयः परन्तु यमकलक्षणे स्वरव्यञ्जनयोः समग्रसाम्यमावश्यकम्। यदि

किञ्चिन्मात्रमपि वैषम्यमुपलभ्यते चेदनुप्रास एव भवति।^{१९} योगवासिष्ठेऽनुप्रासस्याधानं कविना प्राचूर्येण कृतम्। तद्यथा प्रथमप्रकरणस्य प्रथमसर्गे- **‘बभूवाथ... कलकोलाहलाकुलः॥’**^{२०}

अत्र ‘कल’, ‘कोल’, ‘कुल’ इत्यत्र कलव्यञ्जनवर्णसमूहस्य त्रिवारमावृत्तिर्वर्ततेऽतः स्फुट एवात्र वृत्यनुप्रासः। तथान्यस्थलेषु द्रष्टव्यम्।^{२१} **उपमा**-उपमानोपमेययोर्मध्ये वैधर्म्याकथने सत्येकवाक्ये सादृश्यस्य कथनं यदि क्रियते चेत्सौन्दर्यमुपमालङ्कारेण परिभाष्यते भामहम्मटविश्वनाथप्रभृतैः काव्यशास्त्रज्ञैः।^{२२} योगवासिष्ठेद्वितीयप्रकरणस्य त्रयोदशसर्गे ब्रह्मर्षिवसिष्ठः शमनिरूपणप्रसङ्गे जीवन्मुक्तिफलो वैराग्यादिगुणानामुदयो विशेषतश्च शमवर्णनं श्रीरामचन्द्रमुपदिशति-

मातरीव परं यान्ति विषमाणि मृदूनि च।

विश्वासमिह भूतानि सर्वाणि शमशालिनि॥^{२३}

अस्मिन् पद्ये ‘माता’ इत्युपमानम् ‘शमशाली’ इत्युपमेयः, ‘विश्वासः’ इति साधारणधर्मः, ‘इव’ इत्युपमावाचकशब्दश्च सन्ति। एवं सर्वेऽपि चत्वारोऽङ्गा उपमाया अत्र विद्यन्ते तस्मादत्र पूर्णोपमालङ्कारोऽस्ति स्फुटः। तथान्यत्राप्युपमाया उपस्थितिर्द्रष्टव्या।

उत्प्रेक्षा- अस्मिन्नलङ्कारे प्रकृतस्याप्रकृतरूपेण सम्भावना क्रियते सा सम्भावनैवास्यालङ्कारस्य प्राणस्वरूपिणी वर्तते। आचार्यमम्मटविश्वनाथाभ्यामपि सम्भावनाशब्दस्यैवोत्प्रेक्षालङ्कारे प्रयोगः कृत- **‘सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्’**^{२४} **‘भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना’**^{२५} योगवासिष्ठे प्रथमवैराग्यप्रकरणे सर्वमूर्खप्रियायाः सर्वभोगानर्थप्रदायिन्या लक्ष्म्या निन्दाप्रसङ्गे श्रीरामचन्द्रो महर्षिविश्वामित्रं स्वमानसव्यथां प्रकटयति-

एषा हि विषमा दुःखभोगिनां गहना गुहा।

घनमोहगजेन्द्राणां विन्ध्यशैलमहातटी॥^{२६}

अस्मिन् श्लोके ‘लक्ष्मी’ इति उपमेयायाः ‘विषमा गहना गुहा’, ‘विन्ध्यशैलमहातटी’ इत्युपमानयोः सम्भावना विहितास्ति। एवं स्फुट एवात्रोत्प्रेक्षालङ्कारः।

रूपकम्- आचार्यमम्मटानुसारेण रूपकस्य लक्षणप्रसङ्गे उपमानोपमेययोरभेदमेव मुख्यत्वेन वर्तते-
'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।'^{१७} योगवासिष्ठे निर्वाणप्रकरणे भुशुण्डोपाख्याने भुशुण्डस्वरूपनिरूपण-
प्रसङ्गे भुशुण्डः कथयति-

भूतजालतरङ्गिण्याविशन्त्याः कालसागरे।

वयं संसारसरितस्तटस्था अप्यनादृताः॥^{१८}

प्रस्तुतश्लोके प्रथमपङ्क्तौ प्रथमचरणे 'भूतजाल' इत्युपमेयस्य 'तरङ्गिणी' इत्युपमानस्य चाभेदारोपः कविना कृतः। तत्रैव द्वितीये चरणे 'काल' इत्युपमेयस्य 'सागर' इत्युपमानस्य चाभेदारोपो विहितः। द्वितीयपङ्क्तौ प्रथमचरणे 'संसार' इत्युपमेयस्य 'सरित्' इत्युपमानस्य चाभेदारोपः कविना सम्यक्कृतः। एवमत्र स्फुट एवास्ति रूपकालङ्कारः। एवमन्येषामप्यलङ्काराणां यथास्थानं साधु चमत्कृतिः कविना प्रदर्शिता।

योगवासिष्ठमहारामायणे गुणविमर्शः-

आचार्यवामनानुसारं गुणा ते सन्ति ये रसं परिपोषयन्ति ये च नित्यरूपेण काव्ये काव्यशोभाकारकधर्माः शोभाधायकोपादानरूपेण सन्ति येषां विन काव्यसौन्दर्यं न जायते। उक्तं वामनेन- 'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः॥'^{१९} त्रयो प्रसिद्धा गुणाः- माधुर्यम् ओजः प्रसादश्च। यद्यपि योगवासिष्ठे कविना प्राचुर्येण गुणानामाधानं बहुत्र कृतं तथाप्यत्र गुडजिह्विकान्यायेन केषाचिन्मुख्यानामेव वर्णनं करिष्यते।
माधुर्यगुणः- चित्तस्य द्रवीभवनमेव चित्तद्रवणं तस्य कारणं चाह्लादगतमेको धर्मविशेषो काव्ये माधुर्यमिति गुणः स्मृतः।^{२०} योगवासिष्ठेलीलोपाख्याने राज्ञी लीला सरस्वतीदेवीं स्वपूर्वजन्मवृत्तान्तं स्मृत्वा श्रावयति-

कनकस्यन्दसन्दोहसुन्दरैरङ्गपञ्जरैः।

स्वर्गेऽप्सरसोम्बुजिन्या...^{२१}

अस्मिन् श्लोके लीला कस्मिंश्चित् स्वपूर्वजन्मन्यपसराभवत्। अत्र सा स्वरतिरूपं वर्णयति तस्मादत्र शृङ्गाररसप्रसङ्गो वर्तते। एवं शृङ्गाररसप्रसङ्गे 'स्यन्द', 'सन्दोह', 'सुन्दर', 'अङ्ग', 'पञ्जर',

'अम्बुजिनी' इति शब्देषु संयुक्तवर्णाः स्ववर्गपञ्चमव्यञ्जनैः सहिताः पुनः पुनरपि पठिताः सन्ति। अतोऽत्र स्फुट एव माधुर्यगुणः।

ओजोगुणः- दीप्तिश्चित्तस्य विशेषा वृत्तिवर्तते यस्याञ्चित्तस्य विस्तार इव प्रतिभाति। एषा चित्तस्यावस्था द्रुत्यवस्थातो भिन्नावस्था या प्रतिकूलविषयिणी वर्तते तस्या अवस्थाविशेषजनको धर्मविशेषो रजोगुणो वीररसश्च इति स्मृतः।^{२२} योगवासिष्ठे ओजोगुणस्य कविना प्राचुर्येण प्रयोगो विहितः। तृतीयप्रकरणे लीलोपाख्याने युद्धवर्णनप्रसङ्गे ओजोगुणो द्रष्टव्यः-

आवर्त्तचक्रव्यूहेषु प्रभ्रमद्भटकाष्ठकः।

कष्टटाङ्कारकोदण्डकुण्डलोन्मथनोद्भटः॥^{२३}

अस्मिन् श्लोके वीररसस्य वर्णनं कविना कृतोऽस्ति। रेफसंयोगः षकारटकारयोः णकारडकारयोः संयोगश्च कविना बहुधा कृतः। अतोऽत्र स्फुट एवास्त्योजोगुणः।

प्रसादगुणः- यस्मिन् गुणे सति काव्ये चित्ते रस एव व्याप्नोति यथा शुष्केन्धनेऽग्निः स गुणः प्रसादः कथ्यते।^{२४} योगवासिष्ठे प्रसादगुणस्य स्थितिर्बहुत्रोपलभ्यते तद्यथा वैराग्यप्रकरणे दशमसर्गस्य प्रारम्भः प्रसादगुणेन कविना विहितः-

आगच्छामि क्षणेनेति वक्ति ध्यायति चौकतः।

न कस्यचिच्च निकटे स्थातुमिच्छति खिन्नधीः॥

इत्युक्तस्तेन भूपालस्...^{२५}

रसहीना कठिना च भाषा न सामाजिकानामन्तःकरणेषु प्रभावकारिणी भवति। योगवासिष्ठमहारामायणस्य कर्त्रा रसालङ्कारगुणादीनां यथास्थानं साफल्येन ग्रन्थनं कृतं यस्मादेष गन्थो काव्यस्यालोचकानां कृतेऽवगाहनस्थानं ब्रह्मानन्दसहोदरस्थानं च वर्तते। एवं स्वहृदये विचार्य ग्रन्थकारेण ब्रह्मविद्यं काव्यरूपेण संसारस्य समक्षां काव्यदर्शनाख्यायिकात्रिवेणिसङ्गम इव प्रस्तुतम्।

**यत्कथ्यते हि हृदयङ्गमयोपमानयुक्त्या गिरा
मधुरयुक्तपदार्थया च।**

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमासः-२०७३)

२५

श्रोतुस्तदङ्ग हृदयं परितो विसारि व्याप्नोति
 नैलमिव वारिणि वार्यं शङ्काम्॥
 त्यक्तोपमानमनोज्ञपदं दुरापं क्षुब्धं धराविधुरितं
 विनिगीर्णवर्णम्। श्रोतुर्न याति हृदयं
 प्रविनाशमेतिवाक्यं किलाज्यमिव भस्मनि
 हूयमानम्॥^{२६}

सन्दर्भसूचि:-

१. चकारेण 'वासिष्ठरामायणम्' 'आर्षरामायणम्'
 'ज्ञानवासिष्ठम्' एतेऽपि समुचिताः।
२. योगवासिष्ठमहारामायणम् - 2.18.33
३. ग्रन्थाध्ययनप्रयोजनानि कविना निर्दिष्टानि- २.१८.३५;
 २.१०.७,९; ३.८.१३
४. शृङ्गाहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः। बीभत्साद्भुतसंज्ञौ
 चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः। निर्वेदस्थायभावोस्ति शान्तोऽपि
 नवमो रसः। काव्यप्रकाशः ४.२९, ३५
५. अहल्या पूर्वमिन्द्रस्य बभूव...नलिन्या नलिनी यथा।
 योगवासिष्ठमहारामायणम् ३.८९.१०-१६
६. योगवासिष्ठमहारामायणम् ३.८९.१९-२१
७. यो.वा.म. ६(१).७७,१०८
८. काव्यप्रकाशः ८.७.६
९. वर्णसाम्यमनुप्रासः। तदेव कारिका ७८
१०. योगवासिष्ठमहारामायणम् १.४.५
११. तदेव १.३३.४३, २.१.५, ३.३५.२-३, ४.९.१६,
 ५.१२.२५, ६(१).४९.२
१२. विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः। उपमेयस्य यत्साम्यं
 गुणलेशेन सोपमा॥ काव्यालङ्कारः २.३०, साधर्म्यमुपमा
 भेदे। काव्यप्रकाशः कारिका ८७
१३. योगवासिष्ठमहारामायणम् १.१७.४९
१४. काव्यप्रकाशः कारिका ९२
१५. साहित्यदर्पणः १०.४०
१६. योगवासिष्ठमहारामायणम् १.१३.१२
१७. काव्यप्रकाशः, कारिका ९३
१८. योगवासिष्ठमहारामायणम् ६(१)।२१.३२
१९. काव्यालङ्कारसूत्रम् ३.१.१
२०. आह्लादकं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्। करुणे विप्रलम्भे
 च तच्छान्ते चातिशयान्वितम्॥ काव्यप्रकाशः ८.६८-६९
२१. योगवासिष्ठमहारामायणम् ३.२७.५१

२२. दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः॥ काव्यप्रकाशः
 ८.४
२३. योगवासिष्ठमहारामायणम् ३.३५.१०-११
२४. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः। व्याप्नोत्यन्यत्
 प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः॥ काव्यप्रकाशः ८.
 ७०-७१
२५. योगवासिष्ठमहारामायणम् १.१०.५-६
२६. तदेव ३.८४.४५-४६

उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयः,
 हरिद्वारम् (उ.ख.)

ऋषि की महत्ता

- ब्र. राहुल आर्य

जब तक सूरज चाँद रहेगा,
 ऊपर नील वितान रहेगा।
 सूखा रेगिस्तान रहेगा,
 तब तक ऋषि महान् रहेगा ॥१॥
 जब तक नदियों में नीर बहेगा,
 अविचल खड़ा गिरीश रहेगा।
 सागर में तूफान उठेगा,
 तब तक ऋषि महान् रहेगा ॥२॥
 जब तक वृक्षों पर पात रहेगा,
 दिन-रात का जब तक साथ रहेगा।
 कोयल का मधुर सुगान रहेगा,
 तब तक ऋषि महान् रहेगा ॥३॥
 जब तक आर्य समाज रहेगा,
 यज्ञों का सम्मान रहेगा।
 वेदों का सुरगान रहेगा,
 तब तक ऋषि महान् रहेगा ॥४॥
 जब तक स्वदेश में प्राण रहेगा।
 इस भूमि का मान रहेगा।
 भारत का यशगान बहेगा,
 तब तक ऋषि महान् रहेगा ॥५॥

- उत्तरमध्यमा द्वितीय वर्ष
 गुरुकुलपौन्धा, देहरादून

रघुवंशे वर्णिताः आदर्शाः

□ रोशनलालः, शोधच्छात्रः...✍

अद्यत्वे समस्ते संस्कृतवाङ्मये सर्वेऽपि पश्चिमा अपश्चिमा विपश्चितः निर्विवादं कालिदासरचितानां ग्रन्थानां वैशिष्ट्यम्, भाषासौन्दर्यम्, अलंकारनैपुण्यम्, वर्णनपाण्डित्यम्, रचनाकौशलं च स्वीकुर्वन्ति। यदि वयमपि साहित्यिकचक्षुषा तस्य ग्रन्थस्य आपंक्ति अध्ययनं कुर्मश्चेत् विज्ञातुं शक्या यच्च कालिदासविषये उपर्युक्तानि तथ्यानि नितान्तमेव दृढानि सन्ति। अत एव साहित्यजगति कालिदासः कविकुलगुरुः उच्यते। भावपक्षः कलापक्षश्च कालिदासस्य अतीव सुबद्धौ वर्तते। सम्प्रति वयं रघुवंशम् अनुसृत्य तदानीन्तनस्य समयस्य काञ्चित् आदर्शभूतां स्थितिं प्रति विचारं विदध्मः। रघुवंशं महाकाव्यं वर्तते। तत्र च कालिदासस्य साहित्यलालित्यं दृष्ट्वा सर्वेऽपि पण्डिता मोदमानाः सन्तः तद्गुणकीर्तनं कुर्वन्ति।

रघुवंशे सामाजिकी स्थितिः - कालिदासेन रघुवंशे भारतस्य उच्चैस्तरा सामाजिकी स्थितिः परिकीर्तिता। रघुवंशे रघूणां शैशववर्णनसमये कालिदासः एतस्मिन् श्लोके उवाच यत् “**शैशवे अभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।**” इमं श्लोकं समीक्ष्य वयं ज्ञातुं शक्याः, यत् तस्मिन् समये सर्वे जनाः शैशवे विद्यायाः सम्यक् अभ्यासं कुर्वन्ति स्म, तथा च आरम्भिकी शिक्षा अनिवार्या आसीत्, यतोहि अस्य विषयस्य पक्षः “**प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भ्रणादपि। स पिता पितरस्तासां केवल जन्महेतवः॥**” अनेन श्लोकेन सृष्टृढो भवति। तस्मिन् समये बालकानां शिक्षायाश्चिन्ता न बालकानां पिता करोति स्म, अपितु एतत् कार्यं तु राज्ञो भवति स्मः। अयं श्लोकः आधुनिक नेतृगणानां कृतेऽपि प्रेरणाप्रदो वर्तते। अद्यत्वे शिक्षाविषये न काञ्चिदपि चिन्तां राजसदृशा नेतारः

कुर्वन्ति। अस्य श्लोकस्य इयमपि व्यञ्जना यत् बालानां शिक्षा यदि राज्ये राजा अनिवार्यरूपेण कारयति चेत् राज्ये शैक्षिकस्थितिः सुचारुः भवति। अद्यत्वे भारते यत् सर्वशिक्षाभियानं प्रचलति, तस्यैव उत्कृष्टतमं रूपमिदम् आसीत् यद् राजा स्वशासनपक्षतः एव शिक्षाव्यवस्थां कुर्यात् यदि राज्ये श्लोकोक्तस्थितिः, शिक्षाया भवति चेत् राज्ये राज्ञः यशो वर्धते। प्रजाः नृपं श्रद्धया अभिनन्दति। परन्तु अत्र अयमपि विचारणीयो विषयो यद् राजा अपि अनिवार्यरूपेण उत्तमशिक्षया शिक्षितः स्यात्। यथा रघुवंशे दिलीपविषये कालिदासः प्राह - “**शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिः विद्यानां पारदृश्वनः**”^{१२} इत्येभिः शब्दैः इदं लक्ष्यते यत् तस्य दिलीपस्य प्रजायाः विषये एतादृशी अवधारणा अस्मात् कारणात् आसीत्, यतोहि स स्वयमेव शिक्षित आसीत्। तथैव च अद्यत्वेऽपि अस्मदीये राष्ट्रे राजनेतृवृन्दानां कृते अनिवार्यतया शिक्षामापदण्डः स्यात्। वयं सम्यक् जानीमो यद् **यथा राजा तथा प्रजा।** अतः नृपः स्वयं दान्तः, शान्तः, कान्तः भवेत् तर्हि प्रजा अपि तादृशी भवति। अतः अत्र इदमवधार्यते यत् तस्मिन् समये जनानां नैतिकताहेतुः तदानीन्तना शिक्षा, तदानीन्तनश्च राजा भवति।

आध्यात्मिकस्थितिः - रघुवंशे इदमपि परिलक्ष्यते यत् तस्मिन् समये राजा प्रजा च आध्यात्मिकक्षेत्रेऽपि उन्नता आसन्। रघुवंशे कालिदासेन उक्तम् - “**यथाविधिहुताग्नीनाम्**”^{१३}। श्लोकेन अनेन परिचय उपलभ्यते यत् तदा जना विधिम् अनुसृत्य यज्ञादिकमपि कुर्वन्ति स्म। आध्यात्मिकविषये तेषां स्थितिः एतादृशी सुदृढा आसीत्, यत् सन्तानोपत्ति यदा राज्ञो दिलीपस्य नाभूत् तदा स अपि स्वगुरोः समीपम् अनुष्ठानाय गच्छति। उक्तमि रघुवंशे - “**भेजे धर्मम् अनातुरः**”^{१४}।

आर्ष-ज्योतिः शोधाङ्कः (सितम्बर-२०१६/ भाद्रपद-आश्विनमासः-२०१३)

२७

“दुदोह गां स यज्ञाय”^{१५} “सन्तानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे।।^{१६} “अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।”^{१७} एभिः श्लोकैः निश्चीयते यत् तस्मिन् समये जना आध्यात्मिक क्षेत्रेऽपि समुन्नताः आसन्। अद्यत्वे आध्यात्मिकक्षेत्रं प्रति जनानाम् अभिरुचिर्न भवति, स च चिन्ताविषयः। आध्यात्मिकतया जनानां मनसि सदाचारः, सत्यता, पवित्रता, विपत्सहनम् इत्यादीनां सञ्चारः भवति। परन्तु अद्यत्वे राजानस्तु आध्यात्मिकताविषयं सम्यक् जानन्ति अपि न।

दण्डीयस्थितिः - रघुवंशे तदानीन्तनस्य दण्डस्य विषयेऽपि दिशानिर्देशो वर्तते। रघुवंशसमये दण्डः अपराधस्य अनुसारमेव भवति स्म। सम्प्रति वयं समाजे पश्यामः, यद् ये च अपराधं न कुर्वन्ति, ते दण्डं प्राप्नुवन्ति अन्ये च सुरक्षिताः तिष्ठन्ति। कालिदासेन उक्तम् - “यथाऽपराधदण्डानाम्”^{१८} “स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्”^{१९} इत्येताभ्यां श्लोकाभ्यां परिलक्ष्यते यत् रघुवंशे दण्डीयस्थितिः यथापराधम् आसीत्। राजा अपि मर्यादायाः कृते एव दण्डमनुसरति स्म। नैयायिकी व्यवस्था तदानीन्तना सुदृढा आसीत्। अद्यत्वे च दण्डनीतिः न अपराधानुरूपा वर्तते।

करव्यवस्था - तदानीन्तने काले करव्यवस्था अतीव सौम्या अनुकरणीया च आसीत्। राजा प्रजाभ्यः करं केवलमेतावन्तमेव गृह्णाति स्म, येन राज्यस्य कार्यं सम्यक् सिध्येत। तदा राजा प्रजायाः सामर्थ्यं परिलक्ष्य एव करं गृह्णाति स्म। रघुवंशे उक्तमपि महाकविना

“प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥

अर्थात् राजा दिलीपः प्रजानां वृद्धयर्थमेव ताभ्यः करं गृह्णाति स्म, यथा सूर्यः सहस्रगुणं जलं वर्षयितुं जलं गृह्णाति। आधुनिकराजनेतृगणानां सदृशः स्वभावः न तदा आसीत्। तदानीं राजानः प्रजानां हितार्थमेव कार्यं कुर्वाणाः आसन्। परन्तु सम्प्रति तु स्वोदरपूर्तिं प्रथमं पश्यन्ति।

उपसंहारः - रघुवंशे ये उपरि केचन तदानीन्तना आदर्शा सूर्यदीपकन्यायेन परिलक्षिताः। तान् च सम्यक् परीक्ष्य, समीक्ष्य विचिन्त्य च वयं एतद् ज्ञातुं शक्नुमो यत् तस्मिन् काले राजा सर्वदा प्रजायाः हितैषी भवति स्म, आतंकीनां कृते कठोरः दण्डः आसीत्। अद्यत्वे तु सर्वे अपि आतंकिनः स्वतन्त्रमनसा परिभ्रमन्ति। अतः यदि अद्यत्वे अपि वयं तान् आदर्शान् आधुनिकराजनीतौ सम्मेलितुमानसः स्याम, तर्हि अद्यापि पुनः भारतं विमोदस्थलं भविष्यति, शासनं सुशासनं भूत्वा चलिष्यति।

-लालबहादुरशास्त्रिविद्यापीठम्,
नवदेहली

सन्दर्भसूची:-

१. रघुवंशः-१-१९
२. रघुवंशः-१-२३
३. रघुवंशः-१-६
४. रघुवंशः-१-२१
५. रघुवंशः-१-२६
६. रघुवंशः-१-३४
७. रघुवंशः-१-३६
८. रघुवंशः-१-६
९. रघुवंशः-१-२५

प्रश्न-वेद नित्य हैं, वा अनित्य?

उत्तर-‘नित्य’ हैं। क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के ‘अनित्य’ होते हैं।

-सत्यार्थ-प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती